

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थानम्
नवदेहली

गङ्गानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ ग्रन्थमाला

॥ ४० ॥

श्रीगोविन्दजित्-भट्टप्रणीतं

सभ्यालङ्करणम्

सम्पादकौ

डॉ० गयाचरण त्रिपाठी • डॉ० प्रभात शास्त्री



Rashtriya Sanskrit Sansthan

(*Under the auspices of the Ministry of Human Resources Development, Govt. of India*)

New Delhi

●

Ganganatha Jha Kendriya Sanskrit Vidyapitha TEXT SERIES

●

General Editor

Dr. G. C. Tripathi

●

No. 40

SABHYĀLAṄKARAṆAM

An Anthology of Sanskrit verses primarily on love-themes

Edited by

Dr. Gaya Charan Tripathi
Principal
G. N. Jha Kendriya Sanskrit Vidyapeetha, Allahabad

Dr. Prabhat Shastri
Pradhān Mantrī
Hindi Sahitya Sammelana Allahabad



ALLAHABAD
1993

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्
(केन्द्रीयमानवसंसाधनविकासमन्त्रालयस्याङ्गभूतम्)
नवदेहली

गङ्गानाथझाकेन्द्रीयसंस्कृतविद्यापीठग्रन्थमाला

प्रधानसम्पादकः
डॉ० गयाचरण त्रिपाठी

—•—

चत्वारिंशं प्रसूनम्

—•—

श्री गोविन्दजित्-भट्ट प्रणीतं

सभ्यालङ्करणम्

(शृङ्गाररसमयः सुभाषितसंग्रहः)

—•—

सम्पादकौ
डॉ० गयाचरण त्रिपाठी • डॉ० प्रभात शास्त्री

—•—

गङ्गानाथझाकेन्द्रीयसंस्कृतविद्यापीठम्
चन्द्रशेखर आजाद पार्क
इलाहाबाद—२११००२
१९९३

श्रीगोविन्दजित्-भट्ट प्रणीतं

सभ्यालङ्करणम्

शृङ्गाररसमयः सुभाषितसंग्रहः

•

सम्पादकौ

डॉ० गयाचरण त्रिपाठी
प्राचार्यः
गङ्गानाथझा-केन्द्रीय-संस्कृत-
विद्यापीठस्य

डॉ० प्रभात शास्त्री
प्रधानमन्त्री
हिन्दीसाहित्यसम्मेलनस्य
प्रयागस्थस्य



श्रीगङ्गानाथझाकेन्द्रीयसंस्कृतविद्यापीठम्
चन्द्रशेखर आज़ाद पार्क
प्रयाग-२११००२

१९९३ ई०

प्रकाशकः
डॉ० गयाचरण त्रिपाठी
प्राचार्यः
गङ्गानाथझाकेन्द्रीयसंस्कृतविद्यापीठम्
चन्द्रशेखर आज़ाद पार्क
इलाहाबाद-२

●

मूल्यम्

●

मुद्रकः
शाकुन्तल मुद्रणालयः
३४, बलरामपुर हाउस
इलाहाबाद-२

FOREWORD

It is a matter of great satisfaction to this Vidyapeetha, and to me personally, that we have been able to bring out a new edition of one of the most charming and beautiful Anthologies of Sanskrit literature, namely of the *Sabhyālaṅkaraṇam* by Govindajī (Sanskritised into *Govindajit*) Bhaṭṭa. This work is third in the series of anthologies published by this Vidyapeetha after *Padya-racanā* (Lakṣmaṇa Bhaṭṭa) and *Subhāṣitahārāvali* (Hari Kavi), both of which have been received well by the Sanskrit scholars.

Judging on the basis of the verses quoted in the *Sabhyālaṅkarṇam,* Prof. Ludwik Sternbach, the great authority on Sanskrit Subhāṣita Literature, has come to the conclusion that this work must have been composed after 1656 A.D. (*Vide* his "*Subhāṣita, Gnomic and Didactic Literature*" in A History of Indian Literature, Vol. IV, O. Harrassowitz, Wiesbaden 1974, p. 28). Thus the work was compiled most probably between 1675 to 1700 A.D., i.e. in a period which is known as *Rītikāla* of Hindi Poetry and which is marked by the decadent Moghul culture of luxury and affluence in North India. This was a time when India was prosperous and affluent, there was no significant political upheaval and the poets attached to various Hindu and Muslim courts were primarily composing songs and poetries describing female

beauty and various aspects of love Even the devotional poetry of Hindi of this period is pre-occupied by the description of the love affairs of Kṛṣṇa and Rādhā.

The *Zeitgeist* (Spirit of Time) seems to have permeated through the whole of the *Sabhyālaṇkaraṇa* too. It is an anthology containing mainly and primarily verses on the theme of love, love in its different shades and colours. The description of the sensuous beauty of the *Femme* occupies here a prominent place and so also her different and changing moods. The pleasures of union and the pangs of separtion have also been described very delicately and oft very vividly. Those who hold Urdu poetry to be superb in delineation of delicate feelings of love must have a look into *Sabhyālaṁkaraṇam* and they would readily agree that the Sanskrit poetry is inferior to no other literature in the depiction of the sentiment of love.

The text of *Sabhyālaṁkaraṇam* as reproduced here is based on a single manuscript made avilable to Dr. Prabhat Shastri, the *Pradhāna Mantri* of Hindi Sāhitya Sammelana, Prayāga by Pt. Kedāra Nātha Sharma Sārasvata, editor of the Sanskrit magazin *Suprabhātam* of Varanasi. Dr. Prabhat Shastri made a transcript of this work available to me with a request to edit it and to publish it in the Text Series of our Vidyapeetha. Since the transcript was not flawless, it had to be corrected and amended at several places, though there might still be some verses which pose difficulty of interpretation. All what we can say about this edition is that it is a much improved version of the work than the one which appeared from Calcutta in 1947 as vol. V of the *Sanskrit-Koṣa-Kāvya Saṁgraha*.

I am thankful to Dr. Prabhat Shastri for making this beautiful work available to us for including in our Series and hope that the *Connoissure* of Sanskrit Poetry shall immensely enjoy the poetic beauty of these delicate love poems

G. N. Jha K. S. Vidyapeetha
Allahabad
July 14th, 1993

Gaya Charna Tripathi
Principal

पठनात् पूर्वम्

संचय अथवा संग्रह मानव-प्रकृति है। संसार भी तो जड़-चेतन एवं जंगम वस्तुओं का समूह है। काव्य-संसार असीम है। अनेक रूप और विविध रंग ये सब हैं साहित्य के अवयव। संस्कृत-साहित्य में मानव-प्रकृति के समग्र को उपस्थित करनेवाली एक विधा है --सुभाषित। सुभाषित अथवा सूक्ति-संग्रह विश्व-साहित्य में अनूठी विधा है। काव्य-संकलन की परम्परा प्रायः सभी भाषा-साहित्य में है, किन्तु कवि-विशेष अथवा विशिष्ट विषयाधारित कविताएँ वहाँ संकलित रहती हैं, वह एकांगी होते हैं। संस्कृत के सुभाषित (सूक्ति-संग्रह) में विभिन्न कवि तथा विविध विषय होते हैं, यथा—लोकोक्तीयपद, नीति, वर्णन (प्रकृति, राज-वैभवादि), भक्ति एवं शृङ्गार आदि। विश्व-साहित्य (पाश्चात्य साहित्य) में इस प्रकार के काव्य-संकलनों की सूचना अभी तक नहीं है। 'गोल्डेन ट्रेजरी' नामक एक संकलन सुप्रसिद्ध अवश्य है परन्तु उसकी प्रकृति सर्वथा भिन्न है, वह प्रकारान्तर से विशिष्ट रचनाकारों की ही रचनाओं को प्रस्तुत करता है। संस्कृत के इन सुभाषितों (सूक्ति-संग्रहों) में वस्तुतः विशेष रूप से अज्ञात कवियों के पद संकलित हैं जो महत्त्वपूर्ण हैं, जिनके अनुशीलन से हम काल-विशेष की सामाजिक-सांस्कृतिक प्रवृत्तियों का सहज ही आकलन कर सकते हैं।

> क्रीडत्किन्नरकामिनीविहसितज्योत्स्नावलक्षीकृताः,
> कस्तूरीमदुर्दिनार्द्रसुरभी प्राग्ज्योतिषीया भुवः,
> नीहारस्थलसंचरिष्णुचमरीलाङ्गूलसम्मार्जनी,
> हेलोन्मृष्टनमेरुपुष्परजसाद्रष्टुं रुसमीहामहे ॥
>
> —सुभाषित-कवि वसुकल्प

कवि प्राग्ज्योतिष की भूमि (आसाम) के दर्शन का उत्कट अभिलाषी है, जहाँ दुग्ध-धवल ज्योत्स्ना-तले किन्नर-रमणियाँ क्रीडा-रत रहती हैं, जो कस्तूरी मद के अति प्रसार से आर्द्र सुरभि-रूप तुषार से युक्त रहती है, इस तुषार-भूमि में विचरणशीला चमरी अपनी पूँछ-रूपी बुहारी से लीला-

पूर्वक पुष्पधूलि (पराग) को समेटती चलती है। तत्कालीन आसाम प्रदेश के वन प्रान्त का यह वर्णन कितना मनमोहक है।

इन सुभाषितों में संकलित कवि मुक्तककार, रससिद्ध सूक्ति-कवि हैं। संस्कृत-साहित्य की यह परम्परा अत्यन्त समृद्ध एवं अविच्छिन्न रही है। इस परम्परा का उदय, विकास तथा उत्कर्ष का काल क्या है, कौन है? प्रथम सुभाषितकार-आदि प्रश्न अद्यावधि अनुत्तरित हैं। कतिपय विद्वान् दीपकर्णिपुत्र सातवाहन हालकवि-संकलित प्राकृत भाषा-निबद्ध गाथासतसई (गाथासप्तशती) को प्रथम स्थान प्रदान करते हैं किन्तु यह निर्विवाद नहीं है। यह ग्रन्थ प्रथम शती का माना जाता है। अस्तु! संस्कृत-साहित्य की इस विशिष्ट परम्परा में संयोजित ग्रन्थों (सूक्ति-संग्रहों) में संकलित कवि एवं विषयानुक्रम प्रायः समान है। इतना ही नहीं, यत्र-तत्र एक ही छन्द भिन्न कवि-नाम से उल्लिखित है और वही छन्द भिन्न विषय से सम्बद्ध किया गया है। एक ही कवि भिन्न नाम से भी निर्दिष्ट है, यथा चित्तप, छित्तप। अद्यावधि प्रकाशित सुभाषित-ग्रन्थों से इतर अनेकशः हस्तलिखित रूप से प्रकाशन की वाट जोह रहे हैं, तथापि इन सूक्ति-संग्रहों का अनुशीलनात्मक अध्ययन निश्चयतः संस्कृत-साहित्य के अध्येताओं के लिए दिशा-संकेतक हो सकेगा। यहाँ हमारा लक्ष्य मात्र तद्विषयक सूत्र-संयोजन है—

(१) **वज्जालग्ग**—यह प्राकृत में है। इसका संकलनकर्ता श्वेताम्बर जैन जयवल्लभ है। इसका अपर नाम जयवल्हम भी है। सन् १६३६ में रत्नदेव नामक कवि ने संग्रह के प्राकृत छन्दों की संस्कृत छाया भी प्रस्तुत की।[1] सम्पूर्ण ग्रन्थ जैन महाराष्ट्री एवं आर्याछन्द में है, विषयानुक्रम से यह वज्जा (अध्याय) में व्यवस्थित किया गया। जयवल्लभ ने अपने प्रयास को स्पष्ट करते हुए कहा है कि उसका दृष्टिकोण महाकवियों की ऐसी सूक्तियों का संग्रह करना था, जिनका सम्बन्ध मानव-जीवन के पुरुषार्थों—धर्म-अर्थ तथा काम से हो किन्तु संग्रह का तृतीयांश (संकलित पदों की संख्या से अर्थ है) ही इनका विवेचन करता है, शेष शृङ्गारपरक है। उल्लेख्य तथ्य है कि

---

१. हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर : विण्टरनित्ज (भाग ३, खण्ड १ : पृष्ठ १७४।

जैनधर्मावलम्बी विद्वान् द्वारा संकलित ग्रन्थ पर जैनधर्म-विषयक कोई छन्द नहीं।[1]

(२) **कवीन्द्रवचनसमुच्चय**—इसकी हस्तलिखित प्रति नेपाल से प्राप्त हुई थी। संग्रह एवं संग्रहकर्त्ता के नाम का अंकन नहीं। सर्वप्रथम डब्ल्यू० एच० थामस ने इसका संपादन कर इसको इस नाम की संज्ञा दी। इसमें संगृहीत कवियों की रचनाओं का काल हम एक हजार ईसवीय तक मान सकते हैं। प्रारंभ 'सुगतव्रज्या' से है। अनुमानतः संकलनकर्ता बौद्धधर्मावलम्बी रहा, क्योंकि 'सुगत' भगवान् बुद्ध का विशेषण है। 'एक अवलोकितेश्वर' (लोकेश्वर) व्रज्या भी इस धारणा को पुष्ट करती है। 'अवलोकितेश्वर' बुद्ध का नाम है। इसमें ५२५ छन्द हैं। शताधिक कवियों का ज्ञान इससे होता है। यह लन्दन से प्रकाशित है।

(३) **सुभाषितरत्न सन्दोह**—इसका कर्ता जैन साधु अमित गति है। अद्यावधि अप्रकाशित है। यह धारापति महाराज भोज के शासनकाल में कदाचित् रहा। इसका काल ९९४ ईसवीय है।

(४) **सदुक्तिकर्णामृतम्**—यह तेरहवीं शती के प्रारंभ का संकलन है। संकलनकर्ता वटुदासपुत्र श्रीधरदास हैं। यह बंगालनृपति लक्ष्मणसेन के सभाकवि थे। इसमें लगभग पाँच सौ कवियों के लगभग ढाई हजार छन्द संगृहीत हैं। मुख्यतः बंगाल के संस्कृत कवि यथा-धोयी, जयदेव आदि के अतिरिक्त बारहवीं शताब्दी के अभिलेखीय कवि गंगाधर तथा पाँच अन्य कवियों की रचनाएँ संकलित की गयी हैं। इस सुभाषित का कई दृष्टियों से विशिष्ट स्थान है।

(५) **सुभाषित अथवा सूक्तिमुक्तावली**—यह तेरहवीं शती के उत्तर भाग का जल्हणकृत संग्रह है। यह तेरहवीं शती के पूर्वार्द्ध में राज्यासीन दक्षिण भारतीय नृपति कृष्ण के राज्यामात्य रहे। इसका एक भाग कवि, काव्य और साहित्येतिहास से संबंधित है एवं दूसरा भाग संपत्ति, दान, भाग्य, दुर्भाग्य, प्रेम, राजसेवा, राजनय, प्रज्ञा, संयोग, वियोग आदि से संबंधित छन्दों का संग्रह है। पहला भाग संक्षिप्त, दूसरा विस्तृत है।

---

१. हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर : विण्टरनित्ज खण्ड १/ पृष्ठ १७४—पाद टिप्पणी।

(६) **शार्ङ्गधरपद्धति**—यह अति विशिष्ट संग्रह है। यह चौदहवीं शती के उत्तर भाग की रचना है। संकलनकर्त्ता श्री शार्ङ्गधर राघव के पौत्र तथा दामोदर-पुत्र रहे। इसका संपादन पीटर्सन ने संपन्न किया था। यह विशालकाय संग्रह है जिसमें पाँच हजार श्लोक संगृहीत किये गये हैं। इसमें कुल १६३ विभागों के अन्तर्गत विषयानुक्रम से छन्द व्यवस्थित हैं। संपादक का मत है कि मूलरूप में यह सुभाषित छह हजार से भी अधिक छन्दों का संकलन रहा है। नौ कवयित्रियों के भी छन्द हैं। शार्ङ्गधर स्वयं भी कवि था अतः इसमें उसके भी छन्द अवश्य हैं।

(७) **सुभाषितावली**—कश्मीरी कवि वल्लभदेव ने पन्द्रहवीं शताब्दी में संकलित किया। इसको भी प्रकाश में लाने का श्रेय पीटर्सन महानुभाव को है। तीन सौ पचास कवियों के तीन हजार पाँच सौ सताईस छन्द संगृहीत हैं। पूना से प्रकाशित है। मंखकवि कृत श्रीकण्ठचरितम् का नवाँ सर्ग इस संग्रह में १११६-११२७ संख्यक पदों द्वारा उद्धृत हैं। छन्द विषयानुसार व्यवस्थित किये गये हैं। अज्ञात कवियों की भी रचनाएँ हैं—

निर्गुणेष्वपिसत्त्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः।
नहि संहरते ज्योत्स्नां चन्द्रश्चाण्डालवेश्मनि ॥

—संख्या २२५

(८) **सुभाषितरत्नकोष**—यह श्री थामस द्वारा संपादित 'कवीन्द्रवचन समुच्चय' का प्रकारान्तर से प्रस्तुत द्वितीय रूप है। दोनों ही संग्रह 'नमोबुद्धाय' मंगलाचरण से प्रारंभ होते हैं। संकलनकर्त्ता भट्ट श्रीकृष्ण है। इसका संपादन डी० डी० कौसाम्बी ने किया है। यह अमेरिका से प्रकाशित है।

(९) **प्रसन्नसाहित्यरत्नाकर**—इसका प्रारंभ शिवव्रज्या से होता है। संकलनकर्त्ता है नन्दनकवि। यह व्याकरण एवं साहित्य दोनों के अधीत विद्वान् थे। संकलन के प्रारंभ में स्वकर्तृत्व-विषयक कथन कवि ने किया है। इसमें ग्यारहवीं शती के कवि उमापति अन्तिम हैं। संपूर्ण संग्रह छह उल्लासों में व्यवस्थित है। कुल दो सौ कवियों के सहस्र छन्द संगृहीत हैं। इसका संग्रह संभवतः बारहवीं शती के प्रारंभ में हुआ है, अप्रकाशित है।

(१०) **कवीन्द्रचन्द्रोदय**—यह प्रकारान्तर से 'कवीन्द्राचार्य सरस्वती अभिनन्दन ग्रन्थ' है। श्रीकृष्ण कवि संकलनकर्ता है। उनहत्तर कवियों के तीन सौ इकसठ छन्द हैं। सभी प्रायः कवीन्द्राचार्य के प्रशंसापरक ही हैं। ओरियण्टल बुक एजेन्सी, पूना से प्रकाशित हुआ था।

(११) **पद्यामृततरंगिणी** संकलनकर्त्ता हरिभास्कर हैं। इसमें देव, राज, रस, अन्योक्ति एवं प्रशस्ति कुल पाँच तरंग हैं। कुल तीन सौ एक पद संगृहीत हैं। चालीस कवि हैं। डॉ० जतीन्द्र विमल चौधरी द्वारा संपादित यह कलकत्ता से प्रकाशित है।

(१२) **सुभाषितावली**—इसके कर्त्ता 'भर्तृहरिनिर्वेद' तथा प्रभावती-परिणय के रचयिता श्री हरिहर उपाध्याय हैं। यह मैथिल कवि है। अप्रकाशित।

(१३) **सुभाषितावली**—इसमें श्रीवर ने लगभग चार सौ कवियों की रचनाएँ संगृहीत की हैं। यह पन्द्रहवीं शती के हैं। संग्रह अप्राप्त है।

(१४) **सुभाषितहारावली**—इसके कर्त्ता दक्षिण भारतीय हरि कवि हैं। संभाव्य है कि यह सम्भा पर आधारित काव्य 'शम्भुराजचरित' का प्रणेता ही है। इसमें कृष्ण कवि की भी रचनाएँ संगृहीत हैं। यह कृष्ण कवि सम्भा का मंत्री रहा। यही 'कलुष' या 'कलश' नाम से प्रसिद्ध रहा है। शम्भुराजचरित। सर्ग १२/१७२ में प्रणेता ने कहा है—'शंभु महीपति (संभा जी) के कृष्ण नानक गुरु के आदेश से मैंने यह रचना की।' इस सुभाषित का संकलन-काल सत्तरहवीं शती का पूर्वार्द्ध संभावित है। अपूर्ण है। गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद से प्रकाशित है।

(१५) **पद्यरचना**—यह लक्ष्मण भट्ट द्वारा संगृहीत और गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद से प्रकाशित है।

(१६) **सूक्तिसुन्दर**—यह सुन्दर कवि का अति लघुकाय संग्रह है। इसमें संकलित रचनाएँ अधिकतर मुस्लिम शासकों की प्रशंसापरक हैं। कलकत्ता से प्रकाशित है।

(१७) **सुभाषितभाण्डारागार**—जैसा कि नाम से ही संकेत मिलता,

कदाचित् यह अतिबृहत् संग्रह है। इसमें कवियों के नाम का उल्लेख नहीं मिलता। इसके कर्ता काशीनाथ हैं। बंबई से प्रकाशित।

(१८) **उद्भटसागर**—कर्त्ता पूर्णचन्द्र कवि भूषण। यह तीन भागों में है। कलकत्ता से प्रकाशित है।

(१९) **पद्यतरंगिणी**—बारह तरंगों में व्यवस्थित इस संकलन के कर्त्ता ब्रजनाथ हैं।

(२०) **पद्यावली**—डॉ० एस० के० डे द्वारा संपादित यह रूप-गोस्वामी का संग्रह है। सोलहवीं शताब्दी की कृति है। ढाका से प्रकाशित है।

(२१) **पद्यवेणी**—कर्त्ता वेणीदत्त। प्राच्यवाणी मन्दिर, कलकत्ता से प्रकाशित।

(२२) **चित्तविनोदिनी**—संकलनकर्त्ता श्री रुद्रनारायण घोष। यह १९वीं शती का अधुनातन संग्रह है। यह संग्रह वस्तुतः चित्तरंजनार्थ ही है। इसमें व्यवस्थन विषयानुसार न करके वर्णानुक्रम से किया गया है। इसमें लगभग २००० छन्द संगृहीत हैं। कवियों का नामोल्लेख और ग्रन्थनामोल्लेख भी है। इसका प्रकाशन स्वयं संकलनकर्त्ता ने सन् १९३८ में लखनऊ से किया था।

(२३) **सूक्तिगंगाधर**—यह संस्कृत-साहित्य में प्रकाशित सुभाषितों (सूक्ति-संग्रहों) का नवनीत है। इसमें लगभग एक हजार सूक्तियाँ पुनः संगृहीत की गयी हैं। संस्कृत छन्दों का हिन्दी के दोहा छन्द में सटीक अनुवाद भी है। संपादक तथा अनुवादक हैं डॉ० चण्डिकाप्रसाद शुक्ल। अस्मिता प्रकाशन, इलाहाबाद से प्रकाशित।

(२४) **विद्याकरसहस्रकम्**—डॉ० उमेश मिश्र द्वारा संपादित होकर इलाहाबाद विश्वविद्यालय से प्रकाशित है। इसमें मिथिला के पण्डितों के श्लोक संगृहीत हैं। श्लोक संख्या एक हजार है।

(२५) **सूक्तिरत्नहार**—'श्री महाराजाधिराज कुलशेखरासाधारण मंत्रिणा निखिल दिक्षु विश्रुतकालिंगराजपट्टवन्धेन नित्योदयप्रताप निर्जित-सूर्येण सूर्येण संग्रहीते कुलशेखररत्नहरि मोक्षपर्व सम्पूर्णम्' संग्रह के अन्त में

अंकित वाक्य में 'सूर्येण संग्रहीते' शब्दों से संकलनकर्त्ता का नाम 'सूर्य' संकेतित है। यह 'सूर्य' कालिंगराज अपर नाम से भी ख्यात रहा—'कालिंगराजकृता सुभाषित रत्नमाला समाप्ता' से बोध होता है।' 'कैटलागस कैटलागारम' में एक ज्योतिर्विद् सूर्य पण्डित का नामोल्लेख बहुशः ग्रन्थ निर्माता के रूप में हुआ है, यह सूर्य उससे भिन्न सूर्य 'कवि' है। जैसा कि संग्रह के सम्पादक साम्बशिवशास्त्री का कथन है। कवि इसलिए कि अन्तिम स्तोत्र-पद्धति उनकी रचना' (सम्पादक के मतानुसार) है।

संकलनकर्त्ता के देश-काल का कोई संकेत नहीं है। इसमें कालिदास, माघ, मुरारी आदि कवियों के साथ महाकवि क्षेमेन्दु के 'कलाविलास' ग्रन्थ से और बिल्हण के भी छन्द संगृहीत हैं। क्षेमेन्द्र का स्थिति-काल ग्यारहवीं शती का उत्तर भाग तक है, वह १०६५ ईसवीय तक जीवित थे, रचनाकाल काफी पूर्व रहा। ऐसी स्थिति में उस सङ्कलन का समय ११वीं शती के उत्तरार्द्ध से १२वीं के प्रारम्भ में कोई अवधि हो सकती है।

इसमें महाभारत, गाथाकोश, ब्रह्माण्डपुराण, बृहत्कथा, रामायण, रघुवंश आदि ८२ ग्रन्थों से एवं ५७ इतर कवियों की लगभग ढाई हजार से अधिक रचनाएँ सङ्कलित हैं। यह त्रिवेन्द्रम संस्कृत सिरीज त्रिवेन्द्रम से सन् १९३८ में प्रकाशित हुआ था।

(२६) **महासुभाषितसंग्रह**—यह एक प्रकार से विविध सुभाषित ग्रन्थों का एकल समुच्चय है। इसका सम्पादन, संस्कृत-सुभाषित-विषय के अधिकारी अध्येता, सुभाषित-विद्वान् डॉ० लुडविक स्टर्नबाख ने किया है। योजनानुसार सम्पूर्ण ग्रन्थ १६ भागों में है। अभी तक इसके चार भाग विश्वेश्वरानन्द शोधसस्थान, होशियारपुर (पंजाब) से प्रकाशित हुए हैं। सुभाषित साहित्य के अनुशीलनकर्ताओं के लिए यह अतिविशिष्ट पाथेय स्वरूप उपस्थित हो रहा है।

इतर सुभाषित संग्रहों में—घासीराम कृत 'रसचन्द्र', भट्टभास्कर सङ्कलित 'रसप्रदीप', भूदेवशुक्ल का 'रसविलास', भट्टगोविन्दजित् कृत 'सारसंग्रह-सुधार्णव' श्रीपाद का 'प्रस्ताव तरंगिणी', पुरुषोत्तम सङ्कलित

'सुभाषितमुक्तावली', वेंकटनाथ का 'सुभाषितनीवी', श्रीनिवासाचार्य का 'सुभाषितपदावली', चक्रवर्तीवेंकटाचार्य द्वारा सङ्कलित 'सुभाषित मंजरी', सायणाचार्यकृत 'सुभाषितसुधानिधि' आदि उल्लेख्य हैं।

सभ्यालङ्करणम् : कर्त्ता-देश-काल-स्थिति

प्रस्तुत सुभाषित ग्रन्थ 'सभ्यालङ्करणम्' के कर्त्ता का नामोल्लेख गोविन्द जी अथवा गोविन्दजित्[1] एवं भट्ट[2] गोविन्दजित् रूप में मिलता है। कदाचित् सभ्यालङ्करण के अतिरिक्त अन्य किसी ग्रन्थ की रचना इस कवि ने नहीं की। जहाँ तक कवि के देश-काल एवं स्थिति का प्रश्न है, उसका समाधान मात्र साक्ष्यों के परिप्रेक्ष्य में ही सम्भव है—गोविन्दजित्, गिरिपुर (गिरनार) निवासी, चुक का पुत्र, मेदपाट (मेवाड़) जातीय १६५६ ईसवीय सन् की रचना नीलकंठ शुक्ल की 'चिमनीचरितम्' से उद्धरण है।[3] इस बहिर्साक्ष्य से स्पष्ट संकेत है कि गोविन्दजित् मेवाड़ अर्थात् राजस्थान भूमि का निवासी था। यही कारण है कि राजस्थान के जोधपुर नगरस्थ माधवेश्वरमहादेव मन्दिर-पार्श्व में रचित नीलकंठ शुक्ल के प्रणय-काव्य 'चिमनीचरितम्' से उद्धरण सङ्कलित है। यह काव्य निश्चय ही लोकप्रिय न रहा होगा। प्रकारान्तर से यह गोविन्दजित् का प्रदेशीय मोह कहा जायगा।

अन्तर्साक्ष्य के आधार पर गोविन्दजित् के स्थिति-काल की पूर्व सीमा १६वीं शताब्दी का उत्तर भाग सम्भावित है—

सभ्यालङ्करण में भानुकर अथवा भानुदत्त नाम से पर्याप्त मात्रा में छन्द सङ्कलित हैं। भानुकर ने अपने छन्दों में शेरशाह की—

---

(१) हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर—श्रीकृष्णामाचारियर/ पृष्ठ ३९१।

(२) पद्यामृततरंगिणी हरिभास्कर (सम्पादक-यतीन्द्रविमल चौधरी) बिब्लियोग्राफी, पृष्ठ १२३।

(३) न्यू० कैटलागस कैटलागारम भाग ६ / पृष्ठ १९५।

श्लोकार्धं वा तदर्धं यदि हि विनिहतं दूषणं दुर्दुरूढैः
किं नश्छिन्नं तदा स्यात् कविकुलविदुषां काव्यकोटीश्वराणाम् ।
वाहाश्चेद गन्धवाहाधिक-सुभग-रयाः पंचषाः काणखंजाः
का हानिः शेरेसाह - क्षितिप - कुलमणेरश्वकोटीश्वरस्य ।।

प्रशंसा की है। इसी प्रकार निजामशाह, विजयनगर के कृष्णदेव (राय) रीवा के वघेलनृप वीरभानु की भी प्रशंसा में छन्द मिलते हैं।

शेरशाह का शासनकाल—१५४०-१५४५ ईसवी, निजामशाह का १५१०-१५५३ और बघेलनृपति वीरभानु का १५४०-१५५५ (इम्पीरियल गजेटियर आफ इण्डिया भाग २१, पृष्ठ २७६) माना जाता है। पण्डितराज जगन्नाथ ने 'रसगंगाधर' में भानुदत्त (भानुकर) की रसमंजरी से—'आत्मीयं चरणं दधाति पुरतो निम्नोन्नतायां भुवि०' उद्धृत किया है। पण्डितराज जगन्ना १७वीं शताब्दी के हैं। अर्थ यह है कि भानुकर या भानुदत्त इससे पूर्व प्रसिद्ध रहे। भानुकर या भानुदत्त १६वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में थे एवं उनके छन्दों का 'सभ्यालङ्करणम्' में संग्रहण, यह संकेत देता है कि इसका सङ्कलनकर्त्ता १६वीं शती के उत्तर भाग में रहा होगा। जहाँ तक उत्तरसीमा का प्रश्न है, वह १७वीं शती स्वीकार करना उचित है, कारण—

(१) सभ्यालङ्करण में नीलकंठ शुक्ल के बाईस छन्द संगृहीत हैं। इनका स्थिति काल सतरहवीं शती का उत्तरभाग है क्योंकि श्री शुक्ल सुप्रसिद्ध वैयाकरण भट्टोजी दीक्षित के शिष्य थे।

शुक्लजनार्दनपुत्रो वत्साचार्यस्य दौहित्रः ।
अभ्यस्तशब्दशास्त्रः भट्टोजिदीक्षितच्छात्रः ।।

—'शब्दशोभा' की पुष्पिका

भट्टोजी दीक्षित श्री शंकर भट्ट के शिष्य रहे।

भल्लारिभट्टोजिमुखाश्चतत्र,
विद्वद्वरान् दिक्प्रथितान् सुपक्षान् ।

भट्टवंशकाव्यम् / सर्ग ४/१८

यह शंकर भट्ट श्री नारायण भट्ट के पुत्र थे। नारायण भट्ट को मुगल

शासक अकबर ने 'जगद्‌गुरु' की उपाधि से विभूषित किया था और उन्होंने विश्वेश्वर मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया था। एतदर्थ प्रभूत धनराशि अकबर ने दी थी। इस घटना का समय प्रसिद्ध इतिहासविद् डॉ० ए० एस० अल्तेकर १५८५ सन् मानते हैं। घटना का सम्यक् विवरण 'भट्टवंशकाव्यम्' (सर्ग ३) में भी प्राप्त है। नारायण भट्ट के पश्चात् ही उनके पुत्र शंकर भट्ट की ख्याति एवं लोकप्रियता हुई होगी, जो काल निश्चय ही १७वीं शती का पूर्व भाग होना चाहिए। नीलकंठ शुक्ल इसी अवधि में भट्टोजी दीक्षित से व्याकरण शास्त्र का अध्ययन किया होगा तत्पश्चात् काव्यरचना में वह प्रवृत्त हुए होंगे। अस्तु।

नीलकंठ शुक्ल के प्रणयकाव्य 'चिमनीचरितम्' के बाईस छन्द 'सभ्यालङ्करणम्' में सङ्कलित हैं, जो १७वीं शती की रचना है। अतः गोविन्दजित् १६वीं शती के उत्तरभाग एवं १७वीं के अन्तिम भाग अथवा १८वीं शती के प्रारम्भ में रहे होंगे।

विषयवस्तु

यदि हम कहें—'सभ्यालङ्करण' अद्यावधि संकलित एवं प्रख्यापित सुभाषित ग्रन्थों से विषयवस्तु आदि में सर्वथा भिन्न है, प्रकारान्तर से विशिष्ट, विविध विषयक छन्दों के स्थान पर संकलनकर्त्ता ने विविध भाव-भूमि की विवृत्ति उपस्थित करनेवाले छन्द संगृहीत किया, विषय है रसराज शृङ्गार। यहाँ शृङ्गार सावयव-बन्धु, बान्धव, सखा, परिचरों के साथ विहरता दृष्टिगत होता है। इस दृष्टि से यह भानुदत्त-रचित 'रसमंजरी' आदि शृङ्गार रचनाओं की कोटि में परिगणनीय नायक-नायिका विवेचक एक शृङ्गाररसोद्भावक काव्यकृति है। विषय-विशेष पर विभिन्न कवियों की रचनाओं का यह संग्रह गोविन्दजित् के गहन अध्ययन, विवेक, सूक्ष्मता तथा खोजी प्रवृत्ति का प्रमाण है। कवि अपने लक्ष्य के प्रति पूर्णतः गम्भीर और विषय उपस्थापन में पदे-पदे सजग है। संकलन की यह सुष्ठु प्रस्तुति उसकी कवि-सहृदयता का परिणाम है। संकलन में गोविन्दजित् भट्ट के भी रस प्रवण छन्द हैं। हम पूर्व पृष्ठों में संकेत दे चुके हैं कि गोविन्दजी, गोविन्दजित् और भट्ट गोविन्दजित् तीनों एक ही नाम हैं अस्तु।

इसमें नवासी कवियों के कुल सात सौ अठहत्तर छन्द संकलित किये गये हैं। कतिपय छन्द अज्ञात कवियों के भी हैं।

'सभ्यालंकरण' की विषय-वस्तु का समायोजन मरीचि संज्ञक विभागों में व्यवस्थित है, कुल आठ मरीचि हैं। इसके अतिरिक्त प्रारम्भ में बीस छन्दात्मक मंगलमरीचि है जिसमें गणेश, सरस्वती, नृसिंह, वामन, भार्गव, दाशरथि, विष्णु, शिव, भवानी, अर्द्धनारीश्वर, हरिहरमूर्ति-स्तुति एवं दशावतारवर्णन है।

वनजौ वनजौ खर्वस्त्रिरामी बुद्धकल्किनौ।
भवन्तु भवतां भूत्यै अवतारा हरेर्दश:॥

—संख्या—१७

प्रथम मरीचि:—में छह् छन्द सुभाषित प्रशंसा, पाँच सम्भोग शृङ्गार प्रशंसा, दो काम प्रभाव, सात स्त्रीप्रशंसा, चार सौन्दर्य वर्णन, दो कान्ति, तीन गुण, एक लावण्य, दो सौकुमार्य, आठ व्यस्तांगवर्णन के छन्द हैं। अठासी छन्दों में शिखा-नखशिख वर्णन प्रस्तुत किया गया है, यथा अंजनम्—

दग्धः पिनाकिना कामो मषीरूपेण वर्तते।
प्रेम्णोद्वहन्ति कामिन्यो नेत्रपात्रेषुकज्जलम्॥

—लक्ष्मणस्य

द्वितीय मरीचि:—में स्वकीयावर्णन है। इसके अन्तर्गत स्त्री-स्वभाव कथनोपरान्त अवस्था भेद के सन्दर्भ में बाला, वयः सन्धि, नवोढा, विश्रब्धनवोढ़ा, अज्ञात-यौवना, ज्ञात-यौवना, मध्या, प्रगल्भा, मध्याधीरा, मध्याअधीरा, मध्याधीरा धीरा, प्रौढ़ा, अधीरा, ज्येष्ठा-कनिष्ठा रूप में नायिका-भेद का कथन, स्वीया के गुणों में शील संवरण, भर्त्तुः शुश्रूषा, कोपेमार्दव और शिक्षा का प्रख्यापन किया गया है—

निकटे गुरुजनभवने रमणश्चरणे पपात मानिन्याः।
शीलवती मौनवती मुक्तवती नूपुरे साऽपि॥

—संख्या—२२४ (भावमिश्र)

तृतीय मरीचि:—यह परकीया विवेचक है। यहाँ कन्यका, परोढा, वृत्तसुरतगोपना, वर्तिष्यमाणसुरतगोपना, कुलटा, नायिका-कथन, कुलटोपदेश,

अनुशयाना की तीन कोटियां विवेचित हैं। मुदिता, सामान्यवनिता, अन्यसम्भोगदुःखिता, प्रेमगर्विता, सौन्दर्यगर्विता, खण्डिता, विप्रलब्धा, उत्का, स्वाधीनपतिका, फिर आठ प्रकार की अभिसारिकाएँ वर्णित की गयी हैं।

चतुर्थ मरीचिः—यह मरीचि नायक-भेद का है। मरीचि का नाम 'शृङ्गाररसोपयोगिनोनायकभेदाः' है। इसमें अनुकूल, दक्षिण, धृष्ट, शठ आदि नायक भेद-कथनोपरान्त शिशुनायक, वृद्धनायक, दूतीसन्देश आदि विषय का चित्रण है।

पार्श्वाभ्यां सप्रहाराभ्यामधरे व्रणखण्डिते।
दूतिसङ्ग्रामयोग्यासि न योग्या दूतकर्मणि॥

संख्या—३४६ (वररुचि)

पंचम मरीचिः—इसमें शृङ्गारोद्दीपक उपादानों, उपकरणों का विवरण प्रस्तुत है, यथा सूर्यास्त, सन्ध्या, सन्ध्यावायु, चक्रवाकविरह, कमलिनीमीलन, कुमुदिनीविकास, अन्धकार, तारकोदय, चन्द्रोदय, ज्योत्स्नातिशय आदि। अन्त में वासकसज्जा का रूप कथन—

अङ्गुलीषु नवरत्न-मुद्रिका-भूषणानि पुनरुक्तभूषणम्।
भूषितासु करजप्रभाङ्कुरैश्चक्रिरे रसवशान्मृगीदृशः॥

संख्या—४२४ (अमरचन्द्र)

षष्ठ मरीचिः—यह सुरतोत्सव प्रकरण है। इसमें आलिंगन, चुम्बन, अधरपान, बलात्कार, सुरत आदि का चित्रण है। स्वकीया, परकीया और समान्यरत ख्यापनोपरान्त, रत, विपरीतरत, रतश्रान्ति, रतान्तनिद्रा आदि का भी विवेचन किया गया है।

सप्तम मरीचिः—इसका नामकरण 'षट्ऋतुवर्णनम' है। इसके अन्तर्गत प्रभात, प्रभातवायु, सूर्योदय, ग्रीष्ममध्याह्न, प्रपापालिका, जलकेलि-वर्णनों के पश्चात् वर्षावर्णन में, धनागम, इन्द्रगोप, शिलीन्ध्र, विद्युत्, खद्योत, घनचाप, घनगर्जित, घनदुर्दिन, वर्षा संयोगी, वर्षाविरही, वर्षा विरहिणी चित्रित हैं। इसी प्रकार, शरद, हेमन्त, शिशिर फिर वसन्त ऋतुओं का भी वर्णन है।

कामस्य जेतुकामस्य मिलनाय महीपतेः।
देवो मीनत्विषा भीतो द्वारीकर्त्तुमिवाययौ ।।

संख्या—६१३ (भानुकर)

अष्टम मरीचिः—इसका नाम 'नायकस्यविप्रलम्भश्रृङ्गार' है। इसमें मानिनी क्रोधोक्ति, मानमोचन, मानान्तसम्भोग, कलहान्तरिता (नायिका), प्रवास, गमन, विरहिणी, प्रलाप, स्मरोपालम्भ चन्द्रोपालम्भ, अनंगलेख-कथन के बाद, नायिकायाविप्रलम्भ श्रृङ्गार के अन्तर्गत तज्जनित दशाओं, हृत्ताप, अरुचि अधृति, पाण्डुता, कृशता, अनालम्ब, उन्माद, मूर्च्छा, मरण का कथन एवं नायकागमन, औत्सुक्यादि का ख्यापन है—

आगच्छन् सूचितो येन येनानीतश्च मे प्रियः।
प्रथमं सखिकः पूज्यः काकः किंवा क्रमेलकः ।।

संख्या—७६३ (रुद्र)

इस लघु विवेचन से स्पष्ट है कि 'सभ्यालङ्करण' निश्चय ही श्रृङ्गार विषयक एकमात्र सुभाषित ग्रन्थ है। यह पारम्परिक विधा से अनुप्राणित होकर भी विषय विवेचन की दृष्टि से भिन्न किन्तु अद्वितीय है। विश्वस्त हूँ—सहृदय रसरसिकों के लिए नहीं अपितु रस नायकादि विषयक अनुशीलनकर्त्ताओं की जिज्ञासा का पूरक होकर यह सुभाषित संग्रह समादृत होगा।

गुरुपूर्णिमा

संवत् २०५०, सन् १९९३ — ***प्रभात शास्त्री***

सभ्यालङ्करणम्

अथ

श्री गोविन्दजित्संगृहीतं

सभ्यालङ्करणम्

।। मङ्गलविंशतिः ।।

।। श्रीमद्गणपतयेनमः ।।

अथ गणेशः

1. तीक्ष्णैस्तिग्मरुचः करैः परिचितां सेक्तुं कपोलस्थलीं
नीराणां निकरं करेण हरता तुच्छीकृते नीरधौ।
मैनाकं समुदीक्ष्य पङ्कपतितं शालूरशङ्काजुषो
हेरम्बस्य पुनातु दन्त-शिखर-व्यापार-लीलारसः ।।

—भानुकरस्य

अथ सरस्वती

2. सा भारती वो विभवाय भूयाद् यद्वल्लकीगीतरसेन लक्ष्मीः।
कराग्र-जाग्रत्कमले वसन्ती सहानवस्थाव्रतभङ्गमाप ।।

—कस्यापि

अथ नृसिंहः

3. शत्रोः श्वासानिलाः पञ्च वयं दश जयोऽत्र कः।
इति क्रोधादिवाताम्राः पान्तु वो नृहरेर्नखाः ।।

4. आह्लादयत्वेष खरैर्नखाग्रैर्दैतेयवक्षः खनिमुत्खनन् वः।
प्रह्लादहृद्यं हृदये द्वितीयमन्वेष्टुमिच्छन्निव सूनुरत्नम् ।।

अथ वामनः

5. किं करिष्यति किलैष वामनो यावदित्थमहसन्न दानवाः।
तावदस्य न ममौ नभस्तले लङ्घितार्क-शशि-मण्डलः क्रमः ।।

अथ भार्गवः

6. नो सन्ध्या समुपास्यते यदि तदा लोकापवादाद् भयं
सा चेत् स्वीक्रियते भविष्यति रवौ राजन्यबीजे नतिः ।
इत्थं चिन्तयतश्चिरं भृगुपतेर्निश्वासकोष्णीकृतो
दृक्कोणप्रतिविम्वशोणसलिलः सन्ध्याञ्जलिः पातु वः ।।

अथ दाशरथिः

7. जानक्याः कमलामलाञ्जलिपुटे याः पद्मरागायिताः
स्रस्ताः श्यामल-काय-कान्ति-कलिता या इन्द्रनीलायिताः ।
न्यस्ता राघवमस्तके प्रविलसत्कुन्दप्रसूनायिता
मुक्तास्ताः शुभदा भवन्तु भवतां श्रीराम-वैवाहिके ।।

8. पावित्र्यं पदयोर्महर्षिमहिला वाह्वोर्बलं शूलिन-
श्चापं वेद विनम्रतां भृगुसुतो वायोः सुतः स्वामिताम् ।
वैदेही प्रियताञ्च यस्य सखितां तारापतिः शूरतां
पौलस्त्यश्च शरण्यतां तदनुजो रामोऽवताद् वश्चिरम् ।।

अथ विष्णुः

9. अखिलभुवनवन्धोर्वैरमिन्दोः सरोजै-
रनुचितमिति मत्वा यः स्व-पादारविन्दम् ।
घटयितुमिव मायी योजयत्याननेन्दौ
वटदलपुटशायी मङ्गलं वः कृषीष्टाः ।।

—*बिल्वमङ्गलस्य*

10. कच-कुच-चिवुकाग्रे पाणिषु व्यापृतेषु
प्रथम - जलधि - पुत्री - सङ्गमेऽनङ्गधाम्नि ।
प्रथित - निविड - नीवी - ग्रन्थि-निर्मोचनार्थं
चतुरधिक-कराशा शार्ङ्गिणो वः पुनातु ।।

अथ शिवः

11. केयूरीकृत - कुण्डलीकृत - जटाजूटावतंसीकृत-
ज्यावल्लीकृतकङ्कणीकृत - कटीसूत्रीकृताहीश्वरः ।

पायाद्धस्तिलकीकृतप्रियतमादर्शीकृताक्षीकृत-
द्यूतारम्भपणीकृतेन्दुशकलः कात्यायनीकामुकः ॥

12. भस्मान्धोरगफूत्कृति-स्फुटभवद्भालाक्षिवह्निज्वल-
ज्ज्वालास्विन्न-हिमांशु-मण्डल-गलत्पीयूषधाराद्रवैः, ।
सञ्जीवद्धरिचर्मगर्जितभयभ्राम्यद्वृषाकर्षण-
व्यासक्तः स्फुटमद्रिजाविहसितो गङ्गाधरः पातु वः ॥

अथ भवानी

13. पञ्चास्यपञ्चदशनेत्रपिधानदक्षाः
कात्यायनी-मृदुकराः कृतिनः पुनन्तु ।
द्वौ वल्लकीं कथय केति च वादयन्ता-
वष्टादशोऽपि घटयन् सुतमौनमुद्राम् ॥

14. वक्षःपीठे निरीक्ष्य स्फटिकमणिशिलामण्डलस्वच्छभासि
स्वां छायां साभ्यसूया त्वमियमिति मुहुः सत्यमाश्वासितापि ।
वामेऽस्या दक्षिणे मे श्रवसि कुवलयं नाहमित्यालपन्ती
दत्ताश्लेषा सहासं मदनविजयिना पार्वती वः पुनातु ॥

अथार्धनारीश्वरः

15. स्तब्धेऽर्धाङ्गे चरणपतनं नैव वामस्य पाणे-
र्वैमत्येनाञ्जलिविरचनं नापि वाचां प्रपञ्चः ।
अंशे जिह्वाकृतजडतया मानवत्यां मृडान्यां
कोऽन्यः कल्पो ह्यनुनयविधावर्धनारीश्वरे स्यात् ॥

अथ हरिहरमूर्तिः

16. स्फटिकमरकतश्रीहारिणोः प्रीतियोगा-
त्तदवतु वपुरेकं कामकंसद्विपोर्वः ।
भवति गिरिसुतायाः सार्धमम्भोधिपुत्र्या
सदृशमहसि कण्ठे यत्र सीमाविवादः ॥

दशावतारवर्णनम्

17. वनजौ वनजौ खर्वस्त्रिरामी बुद्धकल्किनौ ।
भवन्तु भवतां भूत्या अवतारा हरेर्दश ॥

18. यस्यालीयत शल्कसीम्नि जलधिः पृष्ठे जगन्मण्डलं
दंष्ट्रायां धरणी नखे दितिसुताधीशः पदे रोदसी ।
क्रोधे क्षत्रगणः शरे दशमुखः पाणौ प्रलम्बासुरो
ध्याने विश्वमसावधार्मिककुलं कस्मैचिदस्मै नमः ॥

19. पद्माकरलसत्पादो विनतासूनुवाहनः ।
जगत्प्रकाशकः पायादपायाद् भवतो हरिः ॥

20. यः पूतनामारणलब्धवर्णः
काकोदरो येन विनीतदर्पः ।
यशोदयालङ्कृतमूर्तिरव्या-
न्नाथो यदूनामथवा रघूणाम् ॥

॥ इति गोविन्दजिद्विरचिते सभ्यालङ्करणे मङ्गलविंशतिः ॥

॥ प्रथमो मरीचिः ॥

अथ सुभाषितप्रशंसा



21. सुभाषितमयं द्रव्यं यो न सञ्चिनुते बुधः।
सर्वप्रस्तावयज्ञेषु कां प्रदास्यति दक्षिणाम् ॥

22. सुभाषितेन गीतेन युवतीनाञ्च लीलया।
मनो न भिद्यते यस्य स योगी ह्यथवा पशुः ॥

23. सुभाषित - रसास्वाद - जात - रोमाञ्च - कञ्चुकाः।
विनापि कामिनीसङ्गं कवयः सुखमासते ॥

24. संसारकटुवृक्षस्य द्वे फले ह्यमृतोपमे।
सुभाषितरसास्वादः सङ्गतिः सज्जने जने ॥

25. अथ श्रृङ्गारसम्भोगसंभृताः पद्यरूपिणीः।
व्यक्तीकुर्वे सुधाः सर्वे रसमास्वादयन्तु ताः ॥

26. यन्न गीतरसैर्भिन्नं यन्न साहित्यसारवित्।
यन्न कान्तामुखोच्छिष्टं तन्मुखं विवरं विदुः ॥

अथ सम्भोगश्रृङ्गारप्रशंसा

27. स्त्रीसम्भोगात् परं लोके न सौख्यं न रसायनम्।
इन्द्रियाणां कृतार्थत्वं युगपद् येन जायते ॥

28. तौ हस्तौ विकलौ वदन्ति सुधियः स्पृष्टौ न याभ्यां कुचौ
श्रोत्रं तद्विवरं न यत्र पतिता दूतीवचश्चातुरी।
दन्तांस्तानुपलोपमान् रतविधौ यैः खण्डितो नाधरः
किं जाने न जनं पशुं तमबलास्वादं न यो विन्दति ॥

29. द्रष्टव्येषु किमुत्तमं मृगदृशः प्रेमप्रसन्नं मुखं
घ्रातव्येषु च किं तदास्यपवनः श्राव्येषु किं तद्वचः।
किं स्वाद्येषु तदोष्ठपल्लवरसः स्पृश्येषु किं तत्तनु-
र्ध्येयं किं नवयौवने सहृदयैः सर्वत्र तद्विभ्रमाः ॥

30. अविदितसुखदुःखं निर्गुणं वस्तु किञ्चि-
ज्जडमतिरिह कश्चिन्मोक्ष इत्याचचक्षे।
मम तु मतमनङ्गस्मेरतारुण्यघूर्णन्-
मदकलमदिराक्षी-नीवि-मोक्षो हि मोक्षः ॥

31. निःसारे जगतां प्रपञ्च-सदृशे सारं कुरङ्गीदृशा-
मेकं भोगसुखं परात्मपरमानन्देन तुल्यं विदुः।
तज्जात्यादिविवेकमूढमनसो लब्ध्वापि नानाङ्गनाः
संविन्दन्ति न काम-तन्त्र-विकलाः पश्वादिवन्मानवाः ॥

अथ कामः

32. कुलगुरुरबलानां केलिदीक्षाप्रदाने
परमसुहृदनङ्गो रोहिणीवल्लभस्य।
अपि कुसुमपृषत्कैर्देवदेवस्य जेता
जयति मदनलीलानाटिकासूत्रधारः ॥

33. अगुरुरिव दग्धोऽपि शक्तिमान् यो जने जने।
नमोऽस्त्वमोघवीर्याय तस्मै मकरकेतवे ॥

अथ कामप्रभावः

34 प्रासादीयति वैणवादिगहनं दीपीयति द्राक् तमः
पल्यङ्कीयति भूतलं दृषदपि श्लक्ष्णोपधानीयति।
कस्तूरीयति कर्दमं किमपरं यूनो रसाविष्टयो-
र्येनालोकितयोः स वन्द्यमहिमा देवो नमस्यः स्मरः ॥

35. प्रतप्तायःपिण्डाविव किमपि सन्ताप्य विशिखै-
र्यथा कल्पान्ते वा विघटनमहो नो यदनयोः।
तथा तौ देहौ यः सपदि शिवयोः संघटितवा-
नमुष्मै कामाय प्रतिनमत वामाय विबुधाः ॥

—लक्ष्मणस्य

अथ स्त्रीप्रशंसा

36. यासां सत्यपि सद्गुणानुसरणे दोषानुवृत्तिः परा
याः प्राणान् परमर्पयन्ति न पुनः सम्पूर्णदृष्टिं प्रिये।
अत्यन्ताभिमतेऽपिवस्तुनि विधिर्यासां निषेधात्मक-
स्तास्त्रैलोक्यविलक्षणप्रकृतयो रामाः प्रसीदन्तु ते ॥

37. दृशा दग्धं मनसिजं जीवयन्ति दृशैव याः।
विरूपाक्षस्य जयिनीस्ताः स्तुवे वामलोचनाः ॥

—राजशेखरस्य

38. जाने धरित्र्यां पुरमेव सारं पुरे गृहं सद्मनि चैकदेशः।
तत्रापि शय्या शयने वरा स्त्री गुणोज्ज्वला राज्यसुखस्य सारः ॥

—वराहस्य

39. अमृतस्येव कुण्डानि सुखानामिव राशयः।
रतेरिव निधानानि निर्मिताः केन योषितः ॥

40. क्षीरसागर - कल्लोल - लोल - लोचनयाऽनया।
असारोऽपि हि संसारः सारवानिव लक्ष्यते ॥

—आकाशपोलेः

41. याभिरनङ्गः साङ्गीक्रियते स्त्रियोऽप्यस्त्रीकृता येन।
वामाचरणप्रवणौ प्रणमत तौ कामिनीकामौ ॥

—गोवर्धनस्य

42. रण्णो दाणपसायौ सुललिअगाहा सुसुन्दरीसज्जो ।
तत्ता जेण ण गहिअं पत्तसाणे दुल्लहं होइ ॥
[राज्ञो दानप्रसादौ सुललितगाथा सुसुन्दरीसङ्गः ।
तदाक्षणं येन न गृहीतं पश्चात्काले दुर्लभं भवति ॥]

इति संस्कृतच्छाया

—भट्टगोविन्दजित्संगृहीतोऽयम्

अथ सौन्दर्यम्

43. दग्धो विधिर्विधत्ते न सर्वगुणसुन्दरं जनं कमपि ।
इत्यपवादभयादिव मुग्धाक्षी निर्मिता विधिना ॥

44. एकान्तसुन्दरविधानजडः क्व धाता
सर्वाङ्गकान्तिरुचिरं क्व च रूपमस्याः ।
मन्ये महेश्वरभयान्मकरध्वजेन
प्राणार्थिना युवतिरूपमिदं गृहीतम् ॥

45. अभ्यासः कर्मणां सम्यगुत्पादयति कौशलम् ।
विधिना तावदभ्यस्तं यावत् सृष्टा मृगेक्षणा ॥

46. लावण्यद्रविणव्ययो न गणितः क्लेशो महान् स्वीकृतः
स्वच्छन्दं वसतो जनस्य हृदये चिन्ताज्वरो निर्मितः ।
एषापि स्वगुणानुरूपरमणाभावाद्वराकी हता
नो जाने सखि किं कृतं तु विधिना तन्व्यास्तनुं तन्वता ॥

अथ कान्तिः

47. सुन्दरी वा न वेत्येष विवेकः केन जायते ।
प्रभामात्रं हि तरलं दृश्यते नात्र चाश्रयः ॥

—दण्डिनः

48. अवयवेषु परस्परविम्बिते-
ष्वतुलकान्तिषु कान्तिरभूत्तनोः।
अयमयं प्रविभाग इति स्फुटं
जगति निश्चिनुते चतुरोऽपि कः॥

—*भीमसिंहस्य*

अथ गुणाः

49. अव्याजसुन्दरीं तां विज्ञानेनाद्भुतेन योजयता।
उपकल्पिता विधात्रा बाणाः कामस्य विषदिग्धाः॥

50. अदम्भा हि रम्भा विलक्षा च लक्ष्मी-
र्घृताची ह्रिया चीरसंछादितास्या।
अहो जायते मन्दवर्णाप्यपर्णा
समाकर्ण्य यस्या गुणस्यैकदेशम्॥

—*गदाधरस्य*

51. मुग्धे धानुष्कता केयमपूर्वा तव दृश्यते।
यया विध्यसि चेतांसि गुणैरेव न सायकैः॥

अथ लावण्यम्

52. आबध्नत् परिवेशमण्डलमलं वक्त्रेन्दुविम्बाद्बहिः
कुर्वच्चम्पकजृम्भमाणकलिकाकर्णावतंसक्रियाम्।
तन्वङ्ग्याः परिनृत्यतीव हसतीवोत्सर्पतीवोल्बणं
लावण्यं लसतीव काञ्चनशिलाकान्ते कपोलस्थले॥

—*त्रिविक्रमस्य*

अथ सौकुमार्यम्

53. सरले सौरभसारैर्मा धूपय कुन्तलं तन्व्याः।
रूपभरावनतेयं परिमलभारेण भज्येत॥

—*कस्यापि*

54. वक्षोजद्वयशीलनेऽपि नखरातङ्के न शङ्केत कः
स्याद्बिम्बाधरचुम्बनेऽपि दशनच्छेदेन खेदोदयः ।
आश्लेषेऽपि वपुर्लता तव पुनर्भिद्येत रोमाङ्कुरै-
रित्थं पद्मविलोचने विरमति त्रासो न दासस्य मे ॥

—भानुकरस्य

अथ व्यस्ताङ्गवर्णनम्

55. किमिन्दुः किं पद्मं किमु मुकुरबिम्बं किमु मुखं
किमब्जे किं मीनौ किमु मदनबाणौ किमु दृशौ ।
खगौ वा गुच्छौ वा कनककलशौ वा किमु कुचौ
तडिद्वा तारा वा कनकलतिका व किमबला ॥

56. तद्वक्त्रं यदि मुद्रिता शशिकथा हा हेम सा चेद्द्युति-
स्तच्चक्षुर्यदि हारितं कुवलयैस्तच्चेत् स्मितं का सुधा ।
धिक् कन्दर्पधनुर्भ्रुवौ च यदि तौ किं वा बहु ब्रूमहे
यत् सत्यं पुनरुक्तवस्तुविमुखः सर्गक्रमो वेधसः ॥

—राजशेखरस्य

57. क्ष्वेडो वक्रेक्षितं तेऽधरमणिरमृतं वक्त्रमिन्दुस्तुरङ्गो
दृक्चाञ्चल्यं निषङ्गो रिपुरतनुरुजामप्सरो जित्वरश्रीः ।
कम्बुः कण्ठो धनुर्भ्रूः सुरभिमुखमरुत् पारिजातः प्रफुल्लो
मैरेयं नाम जल्पं त्वयि गजगमनेऽब्धिर्मुधाऽमन्थि मूढैः ॥

58. शोणं वासो गौरमङ्गं विशाले
नेत्रे दीर्घाः कुन्तलाः स्मेरमास्यम् ।
दन्ताः कुन्दद्वेषिणस्ताम्र ओष्ठः
कस्मिन् राजत्येष शम्भोः प्रसादः ॥

—नीलकण्ठस्यैतौ

59. हैमी पुष्पस्तवकयुगलालङ्कृता कापि वल्ली
वल्ल्यां पञ्च स्वरसमधुरस्फूर्तिमन्त्यम्बुजानि ।
चत्वार्येषामुपचयवशात् पञ्चपत्राण्यभूवन्
पत्रे पत्रे कृतवसतयो विंशतिश्चन्द्रविम्वाः ॥

60. मध्योऽयं वलिसद्म दृष्टिरधिका पृथ्वी सुपर्वालयो
वाहुस्तत् कमलेक्षणा त्रिजगतीमेकैव संरक्षति ।
इत्येवं स्तनयोर्मिषेण कनकक्षोणीभृता संधृतौ
यस्यामात्मकिशोरकौ पविभयव्यग्रेण जम्भद्विषः ॥

—गणपतेः

61. शीतांशौ यदि सौरभं यदि भवेदिन्दीवरे वक्रता
माधुर्यं यदि विद्रुमे सरलता कन्दर्पचापे यदि ।
रम्भायां यदि विप्रतीपचलनं लब्धोपमानं तदा
तद्वक्त्रञ्च तदीक्षणं तदधरस्तद्भ्रू स्तदूरुद्वयम् ॥

62. वैषम्यं श्रुतिपङ्कजात् प्रकटयत्यानन्दनीरं दृशोः
स्वर्णालङ्करणाद् व्यनक्ति पुलको वैधर्म्यमङ्गश्रियः ।
तस्या नूपुररत्नरागमहसः पादारविन्दश्रियो
भेदं शिञ्जितमेव वक्ति किमतः शिल्पं विधेर्वर्ण्यताम् ॥

—भानुकरस्य

शिखा-नखवर्णनम्

अथ केशभारः

63. यत्कार्ष्ण्येन वशीकृता जलमुचो नीरं वहन्त्यम्बरे
यद्दैर्घ्येण जिताः श्रयन्ति सकुला हालाहलं पन्नगाः ।
यत्सौन्दर्यजिता भजन्ति चमरीवाला वनान्तस्थितिं
प्रह्लादं वितनोतु वो गिरिभुवः सोऽयं कचानां भरः ॥

—गोविन्दजित्भट्टस्य

64. भग्नं पीनकुचस्थलस्य च रुचा हस्तप्रभाभिर्जितं
प्रोन्मीलद्वदनेन्दुकान्तिविसरैर्दूरात् समुत्सारितम् ।
एतस्याः कलकण्ठकण्ठपटलाकल्पं मिलत् कौतुका-
दप्राप्ताङ्गसुखं रुषेव सहसा केशेषु लग्नं तमः ॥

—*कस्यापि*

65. पुष्पशेखरविशेषसौरभभ्रान्तषट्पदपदेन सुभ्रुवाम् ।
उच्चलन्ति खलु तत्क्षणाङ्गुलीमार्जितोरुकबरीमरीचयः ॥

—*अमरचन्द्रस्य*

अथ कुसुमालङ्काराः

66. चम्पकादिविविधैः कुसुमौघैर्गुम्फितस्तरुणिकेशकलापः ।
राजते नवपयोधरभिन्नं शक्रचापमिव कङ्कणभाभिः ॥

67. भाति विन्यस्तकह्लारः सुकेश्याः केशसञ्चयः ।
शोणितार्द्रैः शरैः पूर्णन्तूणीरमिव मान्मथम् ॥

अथ सीमन्तसिन्दूरम्

68. यस्याः संयमवान् कचो मधुकरैरभ्यर्थ्यमानो मुहु-
र्भृङ्गीगोपजनाभिशापमचिरादुन्मार्ष्टुकामो निजम् ।
सीमन्तेन करेण कोमलरुचा सिन्दूरबिन्दुच्छला-
दातप्तायसपिण्डमण्डलमसावादातुमाकाङ्क्षति ॥

—*गणपतेः*

69. सिन्दूरं रविमिन्दुमाननमसौ धम्मिल्लराहुः समं
यद् ग्रासं ग्रसति स्म तत् प्रियतमे निर्णीतमौत्पातिकम् ।
चोले चञ्चलता भविष्यति पुनः स्यात् कुन्तलाकर्षणं
काञ्ची स्थास्यति न स्थिरा समुदयेदङ्गे महान् सङ्गरः ॥

अथ चूर्णकुन्तलाः

70. भालस्थली चन्द्रकला कलङ्क-रेखां सुसंतक्ष्य ततो विमुक्ता ।
सैव क्रमात् कुण्डलिता कपोले यत्रालकानां श्रियमातनोति ॥

— गणपते

अथ ललाटम्

71. विधोः कलैका हरमूर्ध्नि भालमस्या वितेने विधिरेकया च ।
इति द्वितीयादि-निशासु दृश्या वृद्धौ कलास्तस्य चतुर्दशैव ॥

अथ ललाटतिलकम्

72. मृगनाभिजं तव ललाटपटे तिलकं विराजति विचित्रमिदम् ।
प्रमदातिमानभटभीतिकरं विषमेषु-भूप-करवालमिव ॥

73. विराजतेऽस्यास्तिलकोऽयमञ्चितो
विकुञ्चितभ्रूलतिकाद्वयान्तरे ।
विजित्य लोकद्वितयं दिवं प्रति
स्मरेण बाणो धनुषीव योजितः ॥

74. केयूरं न करे पदे न कटकं मौलौ न माला पुनः
कस्तूरीतिलकं तथापि तनुते संसारसारश्रियम् ।
सर्वाधिक्यमलेखि भालफलके यद्वेधसा सुभ्रुवो
जानीमः किमु तत्र मन्मथमहीपालेन मुद्रा कृता ॥

—भानुकरस्य

अथ कर्पूरतिलकः

75. चन्द्र-चन्दनभवस्तव वाले बिन्दुरिन्दुमुखि राजति भाले ।
रागसागरतरङ्गितहेतुर्बोधयञ्जनमनः कुमुदानि ॥

अथ भ्रुवौ

76. कर्णौ तावत् कुवलयदृशो लोचनाम्भोरुहाभ्या-
माभ्यां क्रान्तौ कनकरुचिरो भालदेशोऽपि जेयः ।
इत्याशङ्काकुलितमनसा वेधसा कज्जलौघैः
सीमारेखा व्यरचि निविडभ्रूलताकैतवेन ।।

—गणपतेः

77. भ्रूरेखायुगलं भाति तस्याश्चपलचक्षुषः ।
पत्रद्वयीव हरिता नासावंशविनिर्गता ।।

—बिल्हणस्य

अथ नयने

78. उत्तंसितं भाति मुखप्रभासु न किञ्चिदब्जं यदहो तदस्याः ।
युक्तं दृशावेव विधिर्विधिज्ञः कर्णद्वयालङ्करणं चकार ।।

79. यो यः पश्यति तन्नेत्रे रुचिरे वनजायते ।
तस्य तस्यान्यनेत्रेषु रुचिरेव न जायते ।।

—शकवृद्धेः

80. नयनस्य तुलां चक्रे नलिनेन नतभ्रुवः ।
न्यूने च नलिने भृङ्गमापानेष विधिर्दधे ।।

—भानुकरस्य

अथ चाञ्चल्यम्

81. दृशौ किमस्याश्चपलस्वभावे न दूरमाक्रम्य मिथो मिलेताम् ।
न चेत् कृतः स्यादनयोः प्रयाणे विघ्नः श्रवःकूपनिपातभीत्या ।।

—श्रीहर्षस्य

82. नतभ्रुवो लोचनखञ्जरीटौ विहारमानङ्गमिहारभेताम् ।
कथं न सानन्दहृदो युवानस्तारुण्यमन्तर्निधिमुन्नयन्तु ।।

—गणपतेः

अथाञ्जनम्

83. दग्धः पिनाकिना कामो मषीरूपेण वर्तते ।
प्रेम्णोद्वहन्ति कामिन्यो नेत्रपात्रेषु कज्जलम् ॥

84. कामिनीनयन-कज्जलपङ्कादुत्थितो मदन-मत्तवराहः ।
कामिमानसवनान्तरचारी मूलमुत्खनति मानलतायाः ॥

अथापाङ्गः

85. पिपासुरिव सञ्चलन्निकटकर्णकूपाञ्चलं
ततः प्रविचलन् पुनः श्रवणपाशभीतोऽभितः ।
तनोति तरलाकृतिस्तरललोचने सन्ततं
गतागतकुतूहलं मुहुरपाङ्गरङ्कुस्तव ॥

—लक्ष्मणस्य

86. क्वचित् कृष्णार्जुनगुणा क्वचित्कर्णान्तगामिनी ।
अपाङ्गश्रीस्तवाऽऽभाति सुभ्रु भारतगीरिव ॥

अथ कर्णताटङ्कम्

87. ताटङ्कमस्याः कमलेक्षणाया मुक्ताफलैश्चारुरुचं विधत्ते ।
मुखश्रिया चन्द्रमिवाभिभूय वन्दीकृतं तारकचक्रवालम् ॥

अथ नासा

88. तव चञ्चललोचने विरिञ्चिः शुकचञ्च्वा रचयाञ्चकार नासाम् ।
अयमप्यधरे तदीय एव निहितः सन्निहिते नताङ्गि रागः ॥

—नीलकण्ठस्य

89. पुराणबाणत्यागाय नूतनास्त्रकुतूहलात् ।
तन्नासा भाति कामेन तूणीवाधोमुखीकृता ॥

अथ नासामौक्तिकम्

90. न बन्धूकं नो वा करककुसुमं नो किसलयं
न बिम्बं नाम्भोजं दलमपि न वा विद्रुमजये ।
इदं नासामुक्ताफलमधरसाम्याय सुदृशः
किमित्थं नाकारं रचयति च दोलायितमिषात् ॥

अथ कपोलौ

91. य एव दृग्दोषनिवारणाय गौराङ्गिगल्ले निहितोऽञ्जनाङ्कः ।
स एव शोभातिशयं दधानो दृग्दोषहेतुर्नव आविरासीत् ॥

92. मा भून्मनागपि मृगाङ्क तव प्रमोदः
कस्तूरिकातिलकभाजि वधूकपोले ।
येनेदमुल्लसितगौरिम पूर्वतोऽपि
प्रादुश्चकार बत कोटिगुणामभिख्याम् ॥

अथ कपोलक्षतिः

93. कमलदृशोऽधिकपोलं दशनक्षतपंक्तिराभाति ।
यूनो वशयितुमिच्छोर्जपमालेवातनोः प्रवालमयी ॥

94. अन्तःकपोलमरुणा रेखा दन्तक्षतिर्जयति ।
यूनोर्वशयितुमिच्छोर्नवपिशुना पञ्चेषुकशेव ॥

—*चत्वारोऽपि नीलकण्ठस्य*

अथाधरः

95. वदनकमलमुद्यन्मन्दहासप्रचारं विरचयति निकारं यत्प्रसादात् सुधांशोः ।
तदिदमधरबिम्बं जीवनं मीनकेतोर्मम वचसि विधत्तां चर्यमाधुर्यधाराः ॥

अथ कोमलता

96. मुख-कोकनदे मदालसाया मकरन्दोऽधरवेश एष मन्ये ।
चपलो युवचित्तचञ्चरीकश्चलतामेति न येन तत्र चञ्चन् ॥

97. किसलयफलमञ्जरीर्जयन्ति द्युतिरससौरभसौरभाणि यस्य ।
विलसति दयितारदच्छदेऽस्मिन्नहह रसाल वृथा तवावतारः ॥

अथ माधुर्यम्

98. यादृङ् मम श्रवणसीमनि वर्तमान-
मास्वाद्यमानमपि तादृशमेव चेत् स्यात् ।
पीयूषमिन्दुमुखि ते रदनच्छदस्य
साम्यं समेतु सुरतावसरं विहाय ॥

अथारक्तता

99. सम्भावनादौ कृतसंविभागमुपर्यवस्थं स्वतुलायमानम् ।
ओष्ठं प्रतीव स्फुटवद्धरोषो रक्तोऽधरः किं जलजेक्षणायाः ॥

—नीलकण्ठशुक्लानामेते

100. अल्पेनापि सुरक्तेन साधनेन प्रयोजनम् ।
ओष्ठद्वयसहायेन कान्तास्येन जगज्जितम् ॥

—कस्यापि

अथाधरक्षतिः

101. सर्वस्यैव हि रत्नस्य व्रणेऽर्घः परिहीयते ।
दयिताधररत्नं तु व्रणितं यात्यनर्घताम् ॥

102. क्वचिदपि वस्तुविशेषे दोषोऽपि गुणेन तुल्यतां याति ।
खण्डनमेव हि मण्डनमधरदले पङ्कजाक्षीणाम् ॥

103. गिरां देव्याः मन्ये वरतनुमुखान्तः स्थितिजुषो
वचोव्याजाद्वीणा क्वणति मनुजागोचररुचिः ।
यतस्तस्यास्तन्त्री-क्षति-जनित - रेखा-परिचितो-
ऽधरच्छद्मा कोणः परिलसति माणिक्यघटितः ॥

—नीलकण्ठशुक्लानाम्

104. दन्तक्षतं कुरङ्गाक्ष्या लक्ष्यतेऽधरपल्लवे ।
पीताधर-सुधासार-निःसार-सरणिः किमु ॥

105. न यत्रालङ्कारो रचयति रुचिं यस्य न रसे
परिच्छेदो यस्मिन् विलसति समस्तेऽपि मृदुता ।
य उत्कर्षं धत्ते कमपि रचिते खण्डन-विधौ
कथं ब्रूमः काव्योपममधरमेनं मृगदृशः ॥

अथ सकज्जलता

106. किमयं कालिमा बाले ! मध्येबिम्बाधरं तव ।
पीताधरसुधाशेषे वल्लभो मुद्रिकां ददौ ?

अथ दन्ताः

107. माधुर्यमेतादृशमाप्तुकामा रसे निजे दाडिमबीजपङ्क्तिः ।
दन्तावलिव्याजत एतदीयं दन्तच्छदं सेवत इत्यवैमि ॥

108. एतस्या रदराजिरेव वदने लोकेन सम्भाव्यते
किं माणिक्यततिः किमत्र च करा उद्यन्मुखेन्दोरथ ।
किं वा दाडिमरम्यशुभ्रकलिका किं विद्रुमाणां तति—
रित्थं सा युवती स्मितेन सततं यूनां करोति भ्रमम् ॥

अथ चिबुकम्

109. विलोकिताऽस्या मुखमुन्नमय्य किं वेधसेयं सुषमासमाप्तौ ।
धृत्युद्भवा यच्चिबुके चकास्ति निम्ने मनागङ्गुलियन्त्रणेव ॥

—श्रीहर्षस्य

अथ मुखम्

110. विना सायं कोऽयं समुदयति सौरभ्यसुभगः
किरन् ज्योत्स्नाधारामधिधरणि तारापरिवृढः ।

धनुर्धत्ते स्मारं तिरयति विहारं न समतां
निरातङ्कः पङ्केरुहयुगलमङ्के लुठयति ॥

—कस्यापि

111. विभज्य स्वं विम्बं वितरति सुरेभ्यः प्रतिदिनं
कलामेकामेतद्वदनसमतासाधनमनाः ।
तथापीन्दुः कामं न भजति निकामं सुवदने-
ऽनुभावाद् देवानां प्रथयति परं मूर्तिमपराम् ॥

112. अङ्कं वक्षसि वारवाणमयते व्योम श्रयत्युच्चकैः
किञ्च स्थापयति स्वरक्षणविधौ ताराभटानग्रतः ।
भीतस्त्वन्मुखमण्डलादिति वयं सम्भावयामः प्रिये
प्राकारं परितस्तनोति परिधि-व्याजात्तमीनायकः ॥

अथ कण्ठः

113. कण्ठस्य विदधे कान्तिं मुक्ताभरणता यथा ।
नास्य स्वभावरम्यस्य मुक्ताभरणता तथा ॥

114. मुदं ददाति त्रिजगज्जयाय
प्रयाणशङ्खो मकरध्वजस्य ।
कण्ठोऽयमस्या मृदुमध्यतार-
स्वरत्रयाधार इति त्रिरेखः ॥

—शकवृद्धेः

अथ बाहुमूलम्

115. ईषद्वक्रिमपक्ष्मपंक्तिभिरनाकूतस्मितैर्वीक्षितै-
रेतैरेव तवाद्य सुन्दरि करक्रोडे जगद्वर्तते ।
अन्तः पांशुलहेमकेतकदलद्रोणीदुरापश्रियो
दोर्मूलस्य विभावनादिह पुनः क्रूरे किमाकाङ्क्षसे ॥

—भानुकरस्य

अथ बाहुः

116. शब्दवद्भिरलङ्कारैरुपेतमतिकोमलम् ।
सुवृत्तं काव्यवद्रेजे तद्बाहुलतिकाद्वयम् ।।

117. सुदीर्घा रागशालिन्यश्चारुपर्वमनोहराः ।
तस्या विरेजुरङ्गुल्यः कामिनां संकथा इव ।।

अथ स्तनौ

118. स्वयंभुवे चन्दनचर्चिताय सुनीलकण्ठाय हृदि स्थिताय ।
नखक्षतेन्दूकृतशेखराय नमो मृगाक्षीस्तनशङ्कराय ।।

तयोरुन्नतिः

119. कथयितुमिव नेत्रे कर्णमूलं प्रयाते
तरुणि तव कुचाभ्यां वर्त्म पश्याव नावाम् ।
स्खलति यदि पदाम्भोजातयुग्मं कथञ्चित्
तनुतरतनुमध्यं भज्यते नौ न दोषः ।।

—कस्यापि

120. नयननीरज किं भवता कृतं
मुखशशी यदयं रिपुराश्रितः ।
इति वचो वितरीतुमिवोन्मुखं
वरतनोः स्तनचक्रयुगं बभौ ।।

121. सौन्दर्यं शशलाञ्छनस्य कविभिर्मिथ्यैव सम्भाव्यते
शोभेदृक् क्व नु पङ्कजस्य रजनीसम्भागभग्नत्विषः ।
इत्यालोच्य चिराय चारुरुचिमत् त्रस्यत्-कुरङ्गीदृशो
वीक्षेते नवयोवनोन्नतमुखौ मन्ये स्तनावाननम् ।।

—रुद्रस्य

तत्काठिन्यम्

122. नरपति-पथमध्ये सञ्चरन्ती नताङ्गी
विकसितमुखपद्मा मन्दयाना मृगाक्षी ।
निजभुजयुगतिष्ठन्नालिकेलच्छलेन
स्वकुचकठिनिमानं व्यञ्जयन्तीव यूनाम् ॥

123. निखिलैर्निरस्तमङ्गैरङ्गीकृत्यापि भावि परिमर्दम् ।
शरणागतमिव रक्षति काठिन्यं कुचयुगं तस्याः ॥

अथ स्तनाग्रम्

124. मनोहरं सर्वमनोहरेषु स्तनद्वयं चञ्चललोचनायाः ।
इतीव दृग्दोषनिवारणार्थं चक्रे विधिश्चक्रककज्जलाङ्कम् ॥

125. सतां समालोकयतां विवेकान् हवींषि हुत्वा स्मरबाणवह्नौ ।
धत्ते स्तनश्यामशिरोमिषेण तनूदरी त्र्यायुष-भस्मबिन्दुम् ॥

126. स्मरः स्वं सर्वस्वं कुचकलशयोः पङ्कजदृशः
स्वयं धृत्वा मुद्रामकृत कुचयोर्नीलिममिषात् ।
न चेदित्थं व्यर्थं कथय कथमेताविह जनं
स्मरस्तं पश्यन्तं प्रहरति शरैरेष विषमैः ॥

अथ नखक्षतम्

127. शुकीचञ्चूत्खात - च्छविफलयुगं यौवनतरो-
रयःशङ्कुक्षुण्णं मदनकरिणः कुम्भयुगलम् ।
समुद्रं भोगायामृतकलशयुग्मं सुकृतिनः
कुचद्वन्द्वं तन्व्याः नवनखपदाङ्कं विजयते ॥

128 आवृणोति विवृणोति वीक्षते लब्धरत्नमिव निर्धनो जनः ।
पीततुङ्गकठिनस्तनान्तरे कान्तदत्तमबला नखक्षतम् ॥

अथ कञ्चुली

129. मन्ये मनोजो निजराजधानीमानीय बालाकुचकैतवेन ।
शम्भुद्वयं प्राक्तनकोपशाली बबन्ध जालीकृतकञ्चुकेन ॥

130. किमकारि महत् पुण्यं त्वया कञ्चुक भूतले ।
अधस्ते कुचयोर्युग्मं हारोऽयमुपरि स्थितः ॥

131. उपरि नाभिसरः परिताडिता पटकुटीव मनोभवभूपतेः ।
निगमने त्रिपुरारिजिगीषया सखि विराजति कामिनिकञ्चुकी ॥

132. एकावलीकलितमौक्तिककैतवेन
तन्व्याः समुन्नतपयोधरयुग्मसेवाम् ।
चक्रुर्मनांसि यमिनामतिनिर्मलानि
कन्दर्पमुक्तशरपातकृतान्तराणि ॥

133 उत्तुङ्गस्तनपर्वतादवतरद्गङ्गेव हारावली
रोमाली नवनीलनीरदरुचिः सेयं कलिन्दात्मजा ।
जातं तीर्थमिदं सुपुण्यजनकं यत्रानयोः सङ्गम-
श्चन्द्रो मज्जति लाञ्छनापहृतये सोऽयं नखाङ्कच्छलात् ॥

अथ मध्यः

134. देहं हेमद्युति परिहृताम्भोजसृष्टिं च दृष्टिं
राशीभूतभ्रमरपटलीचारुवेशश्च केशम् ।
दृष्ट्वा सद्यो विपुलहृदयानन्दमूढेन धात्रा
सारङ्गाक्ष्याः किमु रचयितुं विस्मृतो मध्यदेशः ॥

135. तुङ्गाभोगे स्तनगिरियुगे प्रौढविम्बे नितम्बे
सीमादेशं हरति नृपतौ यौवने जृम्भमाणे ।
मध्यो भीरुः क्वचिदपि ययौ पद्मपत्रेक्षणायाः
शून्यं मध्यस्थलमिति ततः सर्वतः किंवदन्ती ॥

—*भानुकरस्यैतौ*

अथ त्रिवली

136. एकमेव बलिं बद्ध्वा जगाम हरिरुन्नतिम् ।
तस्यास्त्रिवलिबन्धेऽपि सैव मध्यस्य नम्रता ।।

अथ रोमावलिः

137. निर्णेतव्यो मनसिजकलातन्त्रसिद्धान्तसारो
जेतव्या च त्रिदशसुदृशामङ्गलावण्यलक्ष्मीः ।
रोमश्रेणीलिखनसुभगं पत्रमादर्शयन्ती
पत्रालम्बं जगति कुरुते सुभ्रु वो यौवनश्रीः ।।

—भानुकरस्य

138. पयोधरस्तावदयं समुन्नतो रसस्य वृष्टिः सविधे भविष्यति ।
अतः समुद्गच्छति नाभिरन्ध्रतो विसारि-रोमालि-पिपीलिकावलिः ।।

—गणपतेः

139. सौन्दर्यस्य मनोभवेन गणनारेखा किमेषा कृता
लावण्यस्य विलोकितुं त्रिजगतामेषा किमुद्ग्रीविका ।
आनन्दद्रुमकन्दली नयनयोः कि वा समुज्जृम्भते
राधायाः किमु वा स्वभावसुभगा रोमालिरुन्मीलति ।।

—भानुकरस्य

140. निधिनिक्षेपस्योपरि चिह्नार्थमिव लता विनिहिता ।
लोभयति तव तनूदरि जघनतटादुपरि रोमालिः ।।

—गोवर्धनस्य

अथ नितम्बः

141. पृथुवर्तुलतन्नितम्बकृन्मिहिरस्यन्दनशिल्पशिक्षया ।
विधिरेककचक्रचारिणं किमु निर्मित्सति मान्मथं रथम् ।।

—श्रीहर्षस्य

अथ जघनम्

142. तस्याः पद्मपलाशाक्ष्याः स्नान्त्याश्च जघनं घनम् ।
दृष्टं सखीभिर्याभिस्ताः पुंभावं मनसा दधुः ॥

अथाङ्गविशेषः

143. अश्वत्थपत्रसदृशं वैखानसविलसदूर्ध्वपुण्ड्रनिभम् ।
हरिणीखुरोपमेयं मदनपुरं तन्वि ! तावकं जयति ॥

144. विलोमजङ्घायुगमध्यसंस्थितं
विराजतेऽस्याः स्मरमन्दिरम् वरम् ।
अश्वत्थपत्रं किमु हेमनिर्मितं
सुजातरम्भातरुमूलसम्भवम् ॥

—*कामसमूहात्*

अथोरू

145. कदली वत जङ्घायाः सादृश्यं लभते कथम् ।
शैत्यं हि सहजं तत्र, तत्र कालानुरूपता ॥

446. जिताः करिवराः सर्वे कामिन्यूरुयुगेन यत् ।
तेन दीर्घान् प्रमुञ्चन्ति श्वासान् स्त्रीजयपीडिताः ॥

अथ जङ्घे

147 लीलागतिर्यत्र निसर्गसिद्धा, मत्तो न दन्ती मुषितो न हंसः ।
इतीव जङ्घायुगलं तदीयं, चक्रे तुलाकोटचधिरोहणानि ॥

अथ चरणौ

148. अभ्युन्नताङ्गुष्ठनखप्रभाभिर्निक्षेपणाद्रागमिवोद्वहन्तौ ।
आजह्रुस्तच्चरणौ पृथिव्यां स्थलारविन्दश्रियमव्यवस्थाम् ॥

अथ पादतलम्

149 अमूल्यस्य मम स्वर्णतुलाकोटिद्वयं कियत् ।
इति कोपादिवाताम्रं पादयुग्मं मृगीदृशः ॥

अथाङ्गुलीनखाः

150. तस्याः पादनखश्रेणी शोभते च नतभ्रुवः ।
रत्नावलीव लावण्यरत्नाकरसमुद्भवा ॥

151. भूत्यै भवन्तु भवतां गिरिराजकन्या-
पादाम्बुजाग्र - नखरश्मिसहस्रधाराः ।
यत्संपरीतशिखरीन्द्रसुताप्रतीक-
व्यक्तिं न गच्छति कदापि महेश्वरोऽपि ॥

॥ इति श्रीसभ्यालङ्करणे भट्टगोविन्दजित्संगृहीते
नखशिखावर्णनं नाम प्रथमो मरीचिः ॥

॥ द्वितीयो मरीचिः ॥

स्वीयावर्णनम्

●

मङ्गलम्

152. उत्तिष्ठन्त्या रतान्ते भरमुरगपतौ पाणिनैकेन कृत्वा
धृत्वा चान्येन वासो विगलित-कवरीभारमंसे वहन्त्याः ।
भूयस्तत्कालकान्तिद्विगुणितसुरतप्रीतिना शौरिणा वः
शय्यामालिङ्ग्य नीतं वपुरलसलसद्बाहु लक्ष्म्याः पुनातु ॥

—*नारायणस्य*

अथ स्त्रीस्वभावोक्तयः

153 कुचकलशस्खलदम्बर - संवरणव्यग्रपाणिकमलायाः ।
निपतन्ति भाग्यभाजामुपरि कटाक्षाः कुरङ्गाक्ष्याः ॥

154. निधाय कूले निभृतं दुकूले, पिधाय वक्षः करपल्लवेन ।
तिर्यक् चतुर्दिक्षुवितीर्णचक्षुर्नतानताङ्गी सलिलं विवेश ॥

155. लोलत् - कुन्तल - वारिबिन्दुविगलच्छ्रीखण्डविन्दुस्फुरद्-
द्वक्त्रेन्दुस्फुरदक्षिशोणिम लसच्चेलाञ्चलान्दोलिम-
श्लिष्टस्निग्ध - निचोलदर्शितकुचं नम्रीकृतास्यं शनैः
कालिन्दीजलतः प्रयाति पुलिनं शातोदरी राधिका ॥

—*निर्मलस्य*

156 आभुग्नाङ्गुलिपल्लवौ कचभरे व्यापारयन्ती करौ
बन्धोत्कर्ष-विवर्द्धमानसतया शून्यां दधाना दृशम्
बाहूत्क्षेपसमुन्नते कुचयुगे पर्यस्तचीनांशुका
दोःसंकोचितबाहुमूलसुभगं बध्नाति जूटीं वधूः ॥

157. आस्येन्दोः परिवेशवद् रतिपतेश्चाम्पेयकोदण्डवद्
धम्मिल्लाम्बुमुचः क्षणद्युतिवदासज्योत्क्षिपन्ती भुजौ ।
विश्लिष्यद्वलिलक्ष्यनाभि विगलन्नीव्युन्नमन्मध्यमं
किञ्चित् किञ्चदुदञ्चदञ्चलमहो कुम्भस्तनी जृम्भते ॥

158. माषपेषणमिषेण मृगाक्ष्या दोलितो मुहुरनल्पनितम्बः ।
प्रोषिते प्रियतमे चिरकालं विस्मृतं सुरतमभ्यसतीव ॥

159. उद्गच्छद्भृङ्गमालाकुलितकमलिनीकोरकौपम्यभाजा
वक्त्रेणाकृष्य धूमं विवलितवदना कूणिताक्षं क्षिपन्ती ।
नैषा वेशाङ्गनाग्रे करधृतनलिका किन्तु कस्यापि यूनः
प्राग्जन्मोपार्ज्यमानं परिणमति तपो धूमपान-प्रधानम् ॥

160. अग्रेगताङ्घ्रिपरिधानसमर्पणे च
सोपानसक्तवसनान्तविमोचने च ।
व्यापार्यमाणकरमाकुलदृष्टिपातं
सौधाग्रतोऽवतरणं सुदृशः स्मरामि ॥

161. करकिसलयचाल्यमानशूर्प-क्रमनमदुन्नमदक्षिपक्ष्मपालि ।
करनिहित-कनीनिकं स्मिताक्ष्याः क्षणमपि नोत्पवनं जहाति चेतः ॥

—नीलकण्ठशुक्लस्य

162. विलासमसृणोल्लसन्मुशललोलदोःकन्दली-
परस्परपरिस्खलद्बहलनिस्वनोद्बन्धुराः ।
लसन्ति कलहुङ्कृतिप्रसभकम्पितोरःस्थल-
त्रुटद्गमकसंकुलाः कलमकण्डनीगीतयः ॥

163. ग्रीवामूलविधूननं गुरुजनाख्यानं विलोलेक्षणं
जिह्वाग्रे दशनक्षतिः करतलस्पर्शश्च वक्त्राम्बुजे ।
नासामूलकरार्पणं कुचतटाघातः कराग्रेण यत्
प्रत्याख्यान-परापि कामिनि सुधाधारापरिस्पर्धिनी ।।

164. पूर्णाम्भःकुम्भभाराः प्रजवनचलिताश्चूचुकं चालयन्त्य-
श्चीरं संवेलयन्त्यश्चलकमलदृशा लोक[ल]मालोकयन्त्यः ।
झङ्कारैर्झिञ्झिरीणां झटिति जनमनः खेदमुत्पादयन्त्यो
नागर्यः स्वर्णगौर्यो वटनगरभवा यान्ति गेहं सरस्तः ।।

—*कस्यापि*

165. करे कृत्वा तूलं कुचकलशमूलं विदधती
स्फुटं वारं वारं तरलयति हारं सुवदना ।
समीचीना मीनायतनयननीलोत्पलदला
वितन्वाना तन्तून् विकलयति जन्तूनविकलम् ।।

166. रिरंसुकलहंसयोरनुनिशम्य रम्यध्वनिं
क्वचित् क्वणितमीदृशं श्रुतमिति प्रिये पृच्छति ।
नमद्वदनमण्डलं दशनयन्त्रितैकाङ्गुलि-
भ्रमद्भृकुटि सुभ्रुवा द्रुतममज्जि लज्जार्णवे ।।

अथ दृङ्मीलनक्रीडा

167. स्पर्शः स्तम्भवशेन सुन्दरतनोः केनानुभूयेत ते
कृष्णाक्ष्णोस्तव मुद्रणं न करयोः कम्पेन सम्भाव्यते ।
राधामित्र न नेत्रमीलनविधौ योग्यो भवान्, पश्य तद्
दूरादेव निमीलखेलनमिदं गोपीवचः पातु वः ।।

—*नीलकण्ठशुक्लानाम्*

168 नैतस्याः प्रसृतिद्वयेन सरले शक्ये पिधातुं दृशौ
सर्वत्रैव विलोक्यते मुखशशिज्योत्स्नावितानैरियम् ।
इत्थं बालतया सखीभिरसकृद् दृङ्मीलनाकेलिषु
व्याजोक्त्या निभृतं मुखं च नयने स्वे गर्हते कन्यका ॥

—*कस्यापि*

169. एनं विहाय तुलसीविपिनोपकण्ठे
गोप्यः परत्र नयनाम्बुजमीलनानि ।
कुर्वन्तु किन्तु तुलसी-दल-नील-भासं
का वा मुकुन्दमनुविन्दतु लीनमस्मिन् ॥

—*लक्ष्मणस्य*

अथ भ्रमरक्रीडा

170. भ्रमात् प्रकीर्णे भ्रमरीषु किञ्चिच्चेलाञ्चले चञ्चललोचनानाम् ।
कुचौ कदाचिज्जघनं युवानो विलोक्य साफल्यमवापुरक्ष्णाम् ॥

171. परिभ्रमन्त्या भ्रमरीविनोदे
नितम्बबिम्बाद्विगलद्दुकूलम् ।
विलोक्य कस्याश्चन कोमलाङ्ग्याः
पुम्भावमन्याः सुदृशो ववाञ्छुः ॥

—*गुणाकरस्यैतौ*

172. अलक्षितकुचाभोगं भ्रमन्ती नृत्यभूमिषु ।
स्मरेणापि सरोजाक्षी न लक्षीक्रियते शरैः ॥

—*भानुकरस्य*

अथ कन्दुकक्रीडा

173. विदितं ननु कन्दुक ते हृदयं
प्रमदाधरसङ्गतलुब्धमिव ।
प्रमदाकरतामरसाभिहतः
पतितः पतितः पुनरुत्पतसि ॥

174. एकोऽपि त्रय इव भाति कन्दुकोऽयं कामिन्याः करतलरागरक्तरक्तः ।
भूमौ तच्चरणनखांशुरेणुगौरः खस्थः सन्नयनमरीचिनीलनीलः ॥

175. पयोधराकारधरो हि कन्दुकस्तयाऽतिरोषादभिहन्यते मुहुः ।
इतीव नेत्राकृतिभीतमुत्पलं स्त्रियाः प्रसादाय पपात पादयोः ॥

—*कालिदासस्य*

अथ स्त्रीणां अवस्थाभेदाः

तत्र बाला

176. सुधायाः सध्रीची नववचन-वीची विजयते
कुचश्रीः कर्कन्धू-फलमपि न बन्धूकृतवती ।
न शीलं दृग्भङ्गी कलयति कुरङ्गीनयनयो-
स्तथापि श्रीरस्या युवजननमस्या विजयते ॥

—*कस्यापि*

177. न दन्तुरमुरःस्थलं वचसि नाश्रिता चातुरी
विकारि न विलोचनं भुवि न वक्रिमोपक्रमः ।
तथापि हरिणीदृशो वपुषि कापि कान्तिच्छटा
पटावृतमहामणेर्द्युतिरिवात्र संदृश्यते ॥

178. अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै-
रनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम् ।
अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः ॥

—*कालिदासस्य*

अथ वयःसन्धिः

179. मन्दं मन्दं श्रवणपुटकोपान्तगन्ता दृगन्तः
किञ्चित् किञ्चिद्विरमति मनो धूलिकेलीरसेभ्यः ।
आविर्भावः कुचमुकुलयोः कापि कान्तिः समन्ता-
दद्य श्वो वा कुसुमधनुषो यौवराज्याभिषेकः ॥

180. दोलायां जघनस्थलेन चलता लोलेक्षणा लज्जते
साशङ्कं तनुकण्टकक्षतिभिया क्रीडावने क्रीडति ।
धत्ते दिक्षु निरीक्षणं स्मितमुखी पारावतानां रुतैः
सज्जं मौग्ध्यविसर्जनाय सुदृशः शृङ्गारमित्रं वयः ॥

—बिल्हणस्य

181. सन्नद्धोऽयं नवतरुणिमा काममाहर्तुकामो
नैनां मुञ्चत्यहह सहसा कौतुकी बालभावः ।
यद् द्वैराज्यं वरतरतनुस्वर्णभूमौ प्रवृत्तं
प्रायस्तस्मादनुदिनमसौ क्षीयते मध्यदेशः ॥

अथ नवोढा

182. प्रत्यग्रपथिकभावं मन्मथमार्गे प्रणीयमानानाम् ।
सुदृशामीदृग्वयसां रोदनमपि मोदनं तनुते ॥

—नीलकण्ठशुक्लानाम्

183. बलान्नीता पार्श्वं मुखमभिमुखं नैव कुरुते
धुनाना मूर्धानं हरति बहुशश्चुम्बनविधिम् ।
हृदि न्यस्तं हस्तं क्षिपति गमनारोपितमना
नवोढा वोढारं रमयति च सन्तापयति च ॥

184. कृतान्तः कान्तो वा समजनि न भेदः प्रथमत-
स्ततो द्वित्रैर्मासैर्मनुज इति जग्राह हृदयम् ।
ततोऽसो मत्प्रेयानहमपि तदीया सहचरी
क्रमाद् वर्षे याते प्रियतममयं जातमखिलम् ॥

अथ विश्रब्धनवोढा

185. भ्रूवल्ली तव कार्मुकं किल जनो यत्क्षेपणात् कम्पते
दृक् तीक्ष्णो विशिखः करोति हृदयं यूनाञ्च यो जर्जरम् ।
पक्षः पञ्चशरः पुनस्त्रिजगतां जेता तथापि प्रिये
मुग्धे किं रतिसङ्गराय कुरुषे व्यर्थं मनः कातरम् ॥

—शृङ्गारसरस्याम्

186. दत्तं करं वक्षसि मीलिताक्षी
श्लथेन दूरीकुरुते करेण ।
आचुम्बिता नेति मुहुर्विधत्ते
मुखं पुनः संमुखमेव धत्ते ॥

—गणपतेः

187. शय्या कैश्चन वासरैः परिचिता सख्या वचोलम्भना-
त्ताम्बूलाहरणं ततः परिचितं तन्व्या दिनैः पञ्चषैः ।
अभ्यस्तं दिवसैः पुनस्त्रिचतुरैरङ्गाङ्गसम्मेलनं
नीवीस्पर्शमहोत्सवोऽपि भविता श्वो वा परश्वोऽथवा ॥

—कस्यापि

अथ अज्ञातयौवना

188. नीरात्तीरमुपागता श्रवणयोः सीम्नि स्फुरन्नेत्रयोः
श्रोत्रे लग्नमिदं किमुत्पलमिति ज्ञातुं करं न्यस्यति ।
शैवालाङ्कुरशङ्कया शशिमुखी रोमावलीः प्रोञ्छति
श्रान्तास्मीति मुहुः सखीमविदितश्रोणीभरा पृच्छति ॥

—भानुकरस्य

189. मातर्मे न भृशं शरीर-पटुता वक्रा मम भ्रूलता
चेतो भीतिपरायणं मम चले स्थाने न मे लोचने ।
निर्यातौ हृदि गोलकावतितरां गुर्वी नितम्बस्थली
मध्यः क्वापि गतो ममाशु चरणौ मन्दां गतिं संश्रितौ ॥

190. धैर्यं धेहि निरन्तरं स्वहृदये बाले भयं मा कृथाः
स्त्रीणामीदृगपाटवं किल वयःसन्धौ समुत्पद्यते ।
तत्त्वज्ञो गदलक्ष्यलक्षणविधौ दाने च दक्षस्तथा
वैद्यस्ते दयितः क्रियासु कुशलस्तस्मै तनुं दर्शय ॥

अथ ज्ञातयौवना

191. रेखा काचन कज्जलस्य नयनाम्भोजे मिथः कौशला-
दालीभिः सरलीकृतापि कुटिलीभावं समालम्बते ।
लक्ष्या वक्षसि पाणिपद्मविषमस्पर्शोदयादुन्नति-
र्जानीमो वयमेणशावनयने बाल्यं न पाल्यं तव ॥

—भानुकरस्य

192. वक्षस्यावरणादरः स्तनमुखोद्भेदं विनाप्यङ्गुली-
मुद्रासूचितहास्यमास्यमधिकं नो पुत्रिकादौ रसः ।
तिर्यग्लोचनचेष्टितानि वचसां छेकोक्तिसङ्क्रान्तय-
स्तस्या म्लायति शैशवे समभवत् कोऽप्येष नव्यः क्रमः ॥

193. प्रगल्भानामन्तर्विशति विवृणोति प्रियकथां
स्वयं तत्तच्चेष्टाशतमभिनयैर्व्यञ्जयति च ।
स्पृहामन्तः कान्ते वहति न समभ्येति निकटं
यथैवेयं बाला हरति हि तथा चित्तमधिकम् ॥

194. तदा तत्प्रोन्मीलन्म्रदिमरमणीया: कठिनतां
विचित्य प्रत्यङ्गादिव तरुणभावेन घटितौ ।
कुचावाबिभ्राणा: क्षणविनयवैजात्यमसृण-
स्मरोन्मेषा: केषामुपरि न रसानां युवतय: ॥

—मुरारे:

195. स्मेरायमाणवदनस्मितलेशमीषन्-
मन्दायमानगतिरीतिपदारविन्दम् ।
अभ्यस्यमाननवविभ्रमशोभमेत-
दाहूमानयुवमानसमङ्गमस्या: ॥

—लक्ष्मणस्य

अथ मध्या

196. उदयति तरुणिमतरणौ शैशवशशिनि प्रणाशमायाति ।
कुचचक्रवाकयुगलं तरुणितटिन्यां मिथो मिलति ॥

197. प्रात:स्मेरसरोरुहामयमुपाध्यायो दृशोर्विभ्रम:
पाणि: कोकिल-वाणिपल्लवसहाध्यायी समुन्मीलति ।
सन्दर्भो वचसां पचेलिमसुधासिद्धान्तवैतण्डिको
जानीम: कुसुमायुधस्य भगवान् भाग्यालये भार्गव: ॥

198. वाणी कार्तिकरोहिणीपतिचलत्पीयूषकल्लोलिनी
धत्ते दृष्टिरकालकुन्दकलिकालावण्यलीलायितम् ।
नो जाने गमयिष्यतस्तव चिरादङ्गे दिनं केलिभि:
कस्य श्रीफलपीवरस्तनि भवेदेकादशस्थो गुरु: ॥

—एतौ भानुकरस्य

199. इन्दोः सौन्दर्यमास्यं कलयति कमलस्पर्धिनी नेत्रपत्रे
कालिन्द्याः कुन्तलाली कलयति विभवं भव्यमक्ष्णोस्तरङ्गैः ।
तस्याः किं श्लाघ्यतेऽन्यत् सुभगगुणनिधेः काप्यपूर्वैव यस्याः
पुष्पेषोर्वैजयन्ती जयति युवजनोन्मादिनी यौवनश्रीः ।।

200. भ्रूभङ्गः स्तनगौरवं सुकुटिला दृष्टिर्गतिर्मन्थरा
विश्रब्धं हसितं कपोलफलके वैदग्ध्यवक्रं वचः ।
नोद्दिष्टं गुरुणा न वन्धुकथितं दृष्टं न शास्त्रे क्वचित्
वालायां स्वयमेव मन्मथकलापाण्डित्यमुन्मीलति ।।

अथ प्रगल्भा

201. समीचीना चीनांशुकपरिवृताङ्गी सुविलसत्-
कुचापीनाऽहीना घनजघनभागेऽब्जवदना ।
न दीनाऽदीनान्तः कलितमदना सेयमधुना
नवीना मीनाक्षी व्यथयति मुनीनामपि मनः ।।

—नीपाभट्टस्य

202. मधुरवचनैः सभ्रूभङ्गैः कृताङ्गुलितर्जनै-
रलसरचितैरङ्गन्यासैर्महोत्सवबन्धुभिः ।
असकृदसकृत्स्फारस्फारैरपाङ्गविलोकितै-
स्त्रिभुवनजये सा पञ्चेषोः करोति सहायताम् ।।

203. उदञ्चद्वक्षोजद्वयतटभरक्षोभितकटि-
स्फुरद्दृग्भ्यां मन्दीकृतविलसदिन्दीवरयुगम् ।
समुद्यद्भ्रूभङ्गप्रविहितधनुर्भङ्गमनिशं
वयस्तत् पद्माक्ष्याः कथमिव मनो न व्यथयति ।।

—लक्ष्मणस्य

अथ मध्या धीरा

204. राधावासनिकेतनादुपगतश्चन्द्रावलीमालपन्
राधे क्षेममयीति तस्य वचनं श्रुत्वाह चन्द्रावली ।
कंसक्षेममये विमुग्धहृदये कंसः क्व दृष्टस्त्वया
राधा क्वेति विलज्जितो नतमुखो दामोदरः पातु वः ॥

—बिल्वमङ्गलात्

205. लोलालिपुञ्जे व्रजतो निकुञ्जे
स्फारा बभूवुः श्रमवारिधाराः ।
देहे समीहे भवतो विधातुं
धीरं समीरं नलिनीदलेन ॥

—भानुकरस्य

206. तदवितथमवादीर्यन्मम त्वं प्रियेति
प्रियजनपरिभुक्तं यद् दुकूलं दधानः ।
मदधिवसतिमागाः कामिनां मण्डनश्री-
र्व्रजति हि सफलत्वं वल्लभालोकनेन ॥

—माघस्येदम्

अथ मध्या अधीरा

207. सागसि प्रेयसि प्रेम धत्ते निस्त्रपनिस्त्रपा ।
मादृशी तादृशी नास्ति यथेष्टं चेष्टतां भवान् ॥

208. वदने कालिमास्त्येष मृषा तदपि भाषसे ।
प्रेमपात्रं त्वमेवासि भाग्यं तव न तादृशम् ॥

अथ मध्या धीराधीरा

209. सार्धं मनोरथशतैस्तव धूर्त कान्ता
सैव स्थिता मनसि कृत्रिमभावरम्या ।
अस्माकमस्ति न च कश्चिदिहावकाश-
स्तस्मात् कृतं चरणपातविडम्बनाभिः ॥

210. नाम्नोऽपि श्रवणेन यस्य परमानन्दं मनो जायते
यद्वक्त्रेन्दुविलोकनोत्थितमुदम्भोधेस्तु सीमैव न ।
स त्वं लोचनगोचरो भवसि चेद् दृष्टिर्भृशं दह्यते
नो जाने प्रकृतौ विरोध उदभूत् कस्मादकस्मान्मम ॥

—भावमिश्रस्य

अथ प्रौढा अधीरा

211. वक्षःपीठे निरीक्ष्य स्फटिकमणिशिलामण्डलस्वच्छभासि
स्वच्छायां साभ्यसूया त्वमियमिति मुहुः सत्यमाश्वासितापि ।
वामेऽस्या दक्षिणे मे श्रवसि कुवलयं नाहमित्यालपन्ती
दत्ताश्लेषा सहासं मदनविजयिना पार्वती वः पुनातु ॥

212. कृतककृतकैर्मायाशाठ्यैस्त्वयाप्यतिवर्तितं
निभृतनिभृतैः कोपालापैर्मयाप्युपलक्षितम् ।
भवतु विदितं नेष्टा तेऽहं वृथा परिखिद्यता-
महमसहना त्वं निःस्नेहः समेन समं गतम् ॥

213. यदा त्वं चन्द्रोऽभूः शिशिरकरसम्पर्कमधुर-
स्तदाहं जाता द्राक् शशधरमणीनां प्रतिकृतिः ।
इदानीमर्कस्त्वं खररुचिसमुत्सारितरसः
किरन्ती कोपाग्नीनहमपि रविग्रावघटिता ॥

—भावमिश्रस्य

214. रोहन्तौ प्रथमं ममोरसि तव प्राप्तौ विवृद्धिं स्तनौ
संलापास्तव वाक्यभङ्गिमिलनान्मौग्ध्यं परं त्याजिताः ।
धात्रीकण्ठमपास्य वाहुलतिके कण्ठे तवाऽऽसञ्जिते
निर्दाक्षिण्य करोमि किं नु विशिखाप्येषा न पन्थास्तव ॥

—अमरुकस्य

अथ ज्येष्ठा कनिष्ठा

215. दृष्ट्वैकासनसंस्थिते प्रियतमे पश्चादुपेत्याऽऽदरा-
देकस्या नयने निमील्य विहितक्रीडानुबन्धच्छलः ।
तिर्यग्वक्रितकन्धरः सपुलकप्रेमोल्लसन्मानसा-
मन्तर्हासिलसत्कपोलफलकां धूर्तोऽपरां चुम्बति ॥

—*अमरुकस्य*

216. एकस्मिन् भवने निशि प्रियतमे दृष्ट्वोपविष्टे पति-
र्धूतो वस्त्रविधूननस्य कपटान्निर्वाप्य दीपं तदा ।
एकस्यै प्रददौ स किञ्चन शनैर्गुप्तं वपुर्भूषणं
तूर्ष्णीं पीनपयोधरां तदपरां संश्लिष्टवान् हृष्टवान् ॥

217. धूलीकणैः कौसुम - कन्दुकस्य
क्षिप्तस्य कौतूहलकैतवेन ।
संदूष्य नेत्रद्वयमेकिकायाः
कान्तस्तदन्यां रमयाञ्चकार ॥

—*भावमिश्रस्यैतौ*

॥ अथ स्वीयागुणाः ॥

तत्र शीलसंवरणम्

218. प्रेरयन्ति हृदयं न लोचनं नर्तयन्ति मदनं न दुर्यशः ।
वारयन्त्यविनयं न सम्भ्रमं स्नेहसारशरणं कुलस्त्रियः ॥

—*गणपतेः*

219. पदन्यासो गेहाद् बहिरहिफणारोपणसमो
वचो लोकालभ्यं कृपणधनतुल्यं मृगदृशः ।
निजावासादन्यद् भवनमपरद्वीपतुलितं
निजादन्यः कान्तो विधुरिव चतुर्थीसमुदितः ।।

—लक्ष्मणठक्कुराणाम्

220. सञ्चारो रतिमन्दिरावधि पदन्यासावधि प्रेक्षितं
चेतः कान्तसमीहितावधि पुनर्मानोऽपि मौनावधिः ।
हास्यं चाधरपल्लवावधि सखीश्रोत्रावधि व्याहृतम्
सर्वं सावधि, नावधिः कुलभुवां प्रेम्णः परं केवलम् ।।

अथ भर्तुः शुश्रूषा

221. मय्यायाते सपदि शयनादुत्थितं चाटुवाक्यं
बद्ध्वा पाणी बहु निगदितं क्षालितं पादपद्मम् ।
दत्त्वा वीटीं सविनयमथोद्वीजितं तालवृन्तै-
र्ब्रूते कोपं कुवलयदृशो भूयसी भक्तिरेव ।।

—भानुकरस्य

222. स्नानाम्भो बहु साधिता रसवती देवाग्निकार्योचितः
सम्भारो रचितो विशुद्धवसने कालोचिते योजिते ।
स्नानं नाथ विधीयतामतिथयः सीदन्ति नान्या त्वरा
धन्यं बोधयते शनैरिति पतिं मध्याह्नसुप्तं सती ।।

—दीपकस्य

कोपे मार्दवं यथा

223. नारुण्यं मुखमण्डले न च वचोवैदग्ध्यमन्यादृशं
न भ्रूभङ्गपरिग्रहो न च रहःप्रश्नेऽपि मौनस्थितिः ।
एवं सम्प्रति तर्क्यते तु सुदृशः कोपस्तु मद्वस्तुनि
स्वाधीनेऽपि पुरेव पङ्कजदृशो यन्न प्रभुत्वग्रहः ।।

—गणपतेः

224. निकटे गुरुजनभवने रमणश्चरणे पपात मानिन्याः।
शीलवती मौनवती मुक्तवती नूपुरे सापि॥

—*भावमिश्रस्य*

225. आलापेऽर्धरमणमीक्षणे निमेषः शय्यायां सुरतपरिश्रमेण सुप्तिः।
आश्लेषे भुजलतयोः क्षणं श्लथत्वं धन्यानामितिविरहो मृतिस्तु रोषः॥

—*कस्यापि*

अथ शिक्षा

226. अभ्युत्थानमुपागते गृहपतौ तद्भाषणे नम्रता
तत्पादार्पितदृष्टिरासनविधिस्तस्योपचर्या स्वयम्।
सुप्ते तत्र शयीत तत्प्रथमतो जह्याच्च शय्यामिति
प्राच्यैः पुत्रि निवेदिताः कुलवधूसिद्धान्तधर्मा अमी॥

—*राजशेखरस्य*

227. शुश्रूषस्व गुरुन् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मास्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येऽप्यनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः॥

—*कालिदासस्य*

॥ इति गोविन्दजित्-संगृहीते सभ्यालङ्करणे सम्भोगशृङ्गारे
स्वीयावर्णनं नाम द्वितीयो मरीचिः॥

३

॥ तृतीयो मरीचिः ॥

अथ परकीया

●

तत्र कन्यका

228. किञ्चित्कुञ्चितहारयष्टि सरलभ्रूवल्लिराविःस्मितं
प्रान्तभ्रान्तविलोचनद्युति भुजापर्यस्तकर्णोत्पलम् ।
अङ्गुल्या स्फुरदङ्गुलीयकरुचा कर्णस्य कण्डूयनं
कुर्वाणा नृपकन्यका सुकृतिनं सव्याजमालोकते ॥

229. आरोपिता शिलाया'मश्मेव त्वं स्थिरा भवेति'मन्त्रेण ।
मग्नापि परिणयापदि जारमुखं वीक्ष्य हसितैव ॥

—गोवर्धनस्येदम्

अथ परोढा

230. स्वामी निःश्वसितेऽप्यसूयति मनोजिघ्रः सपत्नीजनः
श्वश्रूरिङ्गितदैवतं नयनयोरीहालिहो यातरः ।
तद्दूरादयमञ्जलिः किमधुना दृग्भङ्गिभावेन ते
वैदग्धीमधुरप्रबन्धरसिक व्यर्थोऽयमत्र श्रमः ॥

—कस्यापि

231. उदयति पिशुनेभ्यो यत्र भीतिर्न लज्जा
प्रतिनयननिपातो नान्तरायं तनोति ।
दयितजनदिदृक्षामीदृशीं पूरयन्मे
त्वमसि पटविशेषच्छिद्रवानेव बन्धुः ॥

—नीलकण्ठशुक्लस्य

232. यः कौमारहरः स एव हि वरस्ता एव चैत्रक्षपा-
स्ते चोन्मीलितमालतीसुरभयः प्रौढाः कदम्बानिलाः ।
सा चैवास्मि तथापि चौरसुरतव्यापारलीलाविधौ
रेवारोधसि वेतसीतरुतले चेतः समुत्कण्ठते ॥

233. अयं रेवाकुञ्जः कुसुमशरसेवासमुचितः
समीरोऽयं वेलानवविदलदेलापरिमलः ।
इयं प्रावृड् धन्या नवजलदविन्यासचतुरा
पराधीनं चेतः किमपि सखि कर्त्तुं मृगयते ॥

—भानुकरस्य

234. सखि सुखयत्यवकाशप्राप्तः प्रेयान् यथा तथा न गृही ।
वातादवारितादपि भवति गवाक्षानिलः शीतः ॥

—गोवर्धनस्य

वृत्तसुरतगोपना

235. एते चित्तविलोचना गुरुजना जिह्वाग्रदोषाः खलाः
पौराः क्रूरवचः प्रपञ्चपटवः श्वश्रूश्च चक्षुःश्रवाः ।
किं स्यादित्थमनर्थबीजमसकृत् सञ्चिन्त्य वक्षोरुहि
स्फूर्जत् किंशुकदाम वामनयना निश्वस्य विन्यस्यति ॥

—भानुकरस्य

वर्तिष्यमाणसुरतगोपना

236. दृष्टिं हे प्रतिवेशिनि क्षणमिहाप्यस्मद्गृहे दास्यसि
प्रायेणास्य शिशोः पिता न विरसाः कौपीरपः पास्यति ।
एकाकिन्यपि यामि सत्वरमितः स्रोतस्तमालाकुलं
नीरन्ध्रास्तनुमालिखन्तु जरठच्छेदा नलग्रन्थयः ॥

237. देहे दुर्ललितस्य देवरशिशोः स्फोटव्रणो दारुणो
मातस्तेन वनस्पतित्वचमुपाहर्तुं मया गम्यते ।
दृप्यन्तु श्वसितानि घर्मसलिलैः पत्राणि लुप्यन्तु वा
वक्षो वा विलिखन्तु हन्त नखरैः क्रूराः कपिश्रेणयः ।।

—भानुकरस्य

238. प्रियो मयैवावचितैः प्रसूनैर्हृष्टो हरस्याऽऽतनुते सपर्याम् ।
अतो नतानेकलताकुलानि यास्यामि सायं विपिनानि सख्यः ।।

—कस्यापि

अथवृत्तवर्तिष्यमाणसुरतगोपन।

239. श्वश्रूः क्रुध्यतु निर्दिशन्तु सुहृदो निन्दतु वा यातर-
स्तस्मिन् किन्तु न मन्दिरे सखि पुनः स्वापो विधेयो मया ।
आखोराक्रमणाय कोणकुहरादुत्फालमातन्वती
मार्जारी नखरैः खरैः कृतवती कां कां न मे दुर्दशाम् ।।

—भानुकरस्य

240. गच्छाम्यच्युत दर्शनेन भवतः किं तृप्तिरुत्पद्यते
किन्त्वेवं विजनस्थयोर्हतजनः सम्भावयत्यन्यथा ।
इत्यामन्त्रणभङ्गिसूचितवृथावस्थानखेदालसा-
माश्लिष्यन् पुलकाङ्कुराञ्चितवपुर्गोपीं हरिः पातु वः ।।

241. असौ सुरतरङ्गिणी न पुनरत्र नौसङ्गमो-
ऽभवत्तरणिमज्जनं पथिक नैव भीतिं भज ।
निधाय हृदि निर्भरं विपुलचारुकुम्भद्वयं
ध्वनद्घनघनागमे घनरसस्य पारं व्रज ।।

—प्रभाकरभट्टस्य

242. व्रजति न भवनं शिरोविरोपी क्वचिदपि कोऽपि न तेन वारयामि ।
अथ पथिक पुमान्न कोऽपि गेहे निशि भवितासि परन्तु सावधानः ॥

—कस्यापि

243. चरमगिरितटीनितम्वबिम्बं रविरपि सेवितुमीहते यदेषः ।
तदिह पथिक कुत्रचिन्निवासं कुरु सुजनव्यसनासहा वदामि ॥

—भावमिश्रस्य

244. गम्यतामन्यतः पान्थ तवेह वसतिः कुतः ।
दोषाश्रया भवेद् येन वसतिः प्रोषितालये ॥

अथ क्रियाविदग्धा

245. दासाय भवननाथे बदरीमानेतुमादिशति ।
हेमन्ते हरिणाक्षी पयसि कुठारं विनिःक्षिपति ॥

—भानुकरस्य

246. सङ्केतकालमनसं विटं ज्ञात्वा विदग्धया ।
हसन्नेत्रार्पिताकूटं लीलापद्मं निमीलितम् ॥

अथ लक्षिता

247. यत् सम्भाषणलालसेव कुरुषे वक्त्रेन्दुमूर्ध्वानतं
धत्से बाहुलतार्गलां कुचतटे निष्क्रान्तिभीत्यैव यत् ।
किं वा संत्रपसे जनोऽयमिति यत् सर्वत्र शङ्काकुला
तज्जाने हृदि कोऽपि तिष्ठति युवा गूढः प्ररूढस्तु ते ॥

248 सायं स्नानमुपासितं मलयजेनाङ्गं समालेपितं
यातोऽस्ताचलमौलिमम्बरमणिर्विश्रब्धमत्रागतिः ।
आश्चर्यं तव सौकुमार्यमधुना क्लान्तासि येनाऽधुना
नेत्रद्वन्द्वनिमीलनव्यतिकरं शक्नोति ते नासितुम् ॥

249. सायं दामग्रथनसमये लग्नया कर्णमूले
सख्या किञ्चित् स्मितमधुरया सादरं सूच्यमानः ।
कोऽयं धन्यः कथय सरसे यत्कथायां पुरस्ता-
दङ्गुल्यग्रं निजमपि मुहुः सूचिविद्धं न वेत्सि ॥

250. मुखं पाण्डुच्छायं नयनयुगलं बाष्पतरलं
तनुः क्षामक्षामा गतमविशदं धैर्यविगमः ।
ह्लियं मुक्त्वा मुग्धे कथयसि न मे सारवचना-
न्यवस्था येनेयं तव सखि मुहूर्तेन विरमेत् ॥

251. यत्तालीदलपाकपाण्डुवदनं यद् दुर्दिनं नेत्रयो-
र्यत् प्रेङ्खोलितकेलिपङ्कजदलं श्वासाः प्रसर्पन्ति च ।
मैवं क्रुध्यतु वर्तते यदि न ते तत् कोऽपि चित्ते युवा
धिग् धिक् त्वां सहपांशुखेलनसखीलोकेऽपि यन्निह्नवः ॥

—राजशेखरस्य

252. कोकः स्तोक-विमुक्त-मौक्तिकभरो निःस्पन्दमिन्दीवरं
चापं चापलवर्जितं हिमकरक्रोडे तमः क्रीडति ।
वातः कातरयत्यपाक्तरसं बन्धूकमेतावती
वार्ता क्वापि कदापि पाणिपिहिता कस्यापि वा तिष्ठति ॥

253. श्वसितमिदमस्कस्मादाविरास्ते कुतस्ते
कथमिव करणीये शून्यशून्या प्रवृत्तिः ।
सहचरि किमिदानीमेकपत्नीव्रतस्य
क्वचन कृतिनि चक्रे पारणां चक्षुरेतत् ॥

—नीलकण्ठशुक्लानाम्

अथ कुलटा।

254. पृथ्वी तावत्त्रिकोणा नगनगरसरिद्वार्धिरुद्धं तदर्धं
तत्राप्यर्धं युवत्यः परिणतशिशुभिः पूरितं तत्र चार्धम्।
त्याज्यास्तत्रापि तात-श्वशुर-सुत-सुहृद्बन्धुवर्गादिलोका
मिथ्यावादो ममायं मुखरमुखभवः पुंश्चली पुंश्चलीति ॥

255. तिमिरेऽपि दूरदृश्या गाढाश्लेषे च रहसि मुखरा च।
मणिमयशङ्खविभूषा गृहपतिशिरसा समं स्फुटतु ॥

—*गोवर्धनस्य*

256. दिवसे घटिकात्रिंशत् त्रिंशद्घटिकाः परं रजनौ।
लक्षं नगरयुवानस्तात विधातः किमाचरितम् ॥

257. एते वारिकणान् किरन्ति पुरुषान् वर्षन्ति नाम्भोधराः
शैलाः शाद्वलमुद्वमन्ति न सृजन्त्येते पुनर्नायकान्।
त्रैलोक्ये तरवः फलानि सुवते नैवाऽरभन्ते जनान्
धातः कातरमालपामि कुलटाहेतोस्त्वया किं कृतम् ॥

—*भानुकरस्य*

अथ कुलटोपदेशः

258. वयं बाल्ये बालांस्तरुणिमनि यूनः परिणता-
वपीच्छामो वृद्धान् परिणयविधेस्तु स्थितिरियम्।
त्वयारब्धं जन्म क्षपयितुमनेनैकपतिना
न मे गोत्रे पुत्रि क्वचिदपि सतीलाञ्छनमभूत् ॥

259. चेत् पौरादपि शङ्कसे हिमरुचेरप्यर्चिषो लज्जसे
भोगीन्द्रादपि चेद् बिभेषि तिमिरस्तोमादपि त्रस्यसि।
चेत् कुब्जादपि दूयसे जलधरध्वानादपि क्षुभ्यसि-
प्रायः पुत्रि हतास्मि हन्त भविता त्वत्तः कलङ्कः कुले ॥

—*भानुकरस्य*

260. नारीणां खलु वन्धुरन्धतमसं पाथोधरः सोदरः
कुब्जश्चापि गृहं निशा सहचरी सेव्यः स्मरः क्ष्मापतिः ।
इत्थं चारुचकोरचञ्चलदृशां यासां मतिर्जायते
तासामेव यशः सुधांशुधवलं तासां गृहे वृद्धयः ॥

261. मया कुमार्याऽपि न सुप्तमेकया
न जारमुत्सृज्य पुमान्निजः श्रितः ।
अनेन गोत्रस्थितिपालनेन मे
प्रसन्नतामेतु भवाधिकारिणी ॥

अथ अनुशयाना त्रिधा

तत्र विद्यमानस्थानविघट्टनेन यथा

262. मूलानि च निचुलानां हृदयानि च कुलवसतिः कुलटानाम् ।
मुदिर-मदिराप्रमत्ता गोदावरि किं विदारयसि ॥

—*भानुकरस्य*

263. समुपागतवति चैत्रे निपतति पत्रे लवङ्गलतिकायाः ।
सुदृशः कपोलपालिः शिव शिव तालीदलद्युतिं लेभे ॥

—*भानुकरस्य*

अथ भाविस्थानाभावशङ्कया यथा

264. शुश्रूषस्व गुरून् निवर्तय सखीर्वन्दस्व बन्धुस्त्रियः
कावेरीतटसन्निविष्टनयने मुग्धे किमुत्ताम्यासि ।
आस्ते पुत्रि समीप एव भवनादेलालतालिङ्गित-
न्यश्चद्वालतमालदन्तुरदरी तत्रापि गोदावरी ॥

265. निद्रालु - केकिमिथुनानि कपोतपोत-
व्याधूतनूतनमहीरुहपल्लवानि ।
तत्रापि तन्वि न वनानि कियन्ति सन्ति
खिद्यस्व न प्रियतमस्य गृहं प्रयाहि ।।

—*भानुकरस्य*

भर्तुर्गमनानुमानेन यथा

266. अनार्यप्रज्ञानामिह नववधूनां हि मनसो
महाशल्यं कर्णे तव कनकजम्बूकिसलयः ।
भ्रमन् भिक्षाहेतोरधिनगरि बुद्धोऽसि न मया
त्वयैतादृग्वेशः पथिक न विधेयः पुनरपि ।।

—*भिक्षाटनस्य*

267. रचिते निकुञ्जपत्रैर्भिक्षुकपात्रे ददाति सावज्ञम् ।
पर्युषितमपि सुतीक्ष्णश्वास-कदुष्णं वधूरन्नम् ।।

—*गोवर्धनस्य*

268. कर्णकल्पितरसालमञ्जरीपिञ्जरीकृतकपोलमण्डलः ।
निष्पतन्नयनवारिधारया राधया मधुरिपुर्निरीक्ष्यते ।।

—*भानुकरस्य*

269. उड्डीनानामेषां शकुनानां कोलाहलं शृण्वत्याः ।
गृहकर्मव्यापृताया वध्वाः सीदन्त्यङ्गानि ।।

—*कस्यापि*

अथ मुदिता

270. एकाकिनी यदवला तरुणी तथाऽह-
मस्मिन् गृहे गृहपतिश्च गतो विदेशम् ।
किं याचसे तदिह वासमियं वराकी
श्वश्रूर्ममान्धवधिरा ननु मूढपान्थ ॥

—*कस्यापि*

सामान्यवनिता

271. दृष्ट्वा प्राङ्गणसन्निधौ वहुधनं दातारमभ्यागतं
वक्षोजौ तनुतः परस्परमिवाऽऽश्लेषं कुरङ्गीदृशः ।
आनन्दाश्रुपयांसि मुञ्चति मुहुर्मालामिषात् कुन्तलो
दृष्टिः किञ्च धनागमं कथयितुं कर्णान्तिकं गच्छति ॥

—*भानुकरस्य*

272. कुप्यत्पिनाकि-नेत्राग्नि-ज्वालाभस्मीकृतः पुरा ।
उज्जीवितः पुनः कामो मन्ये वेश्यावलोकनैः ॥

273. न रूपं न वयो वेषं न जातिं न गुणानपि ।
वारं वारं सरोजाक्षी धनरेखां विलोकते ॥

—*रामकवेः*

अन्यसम्भोगदुःखिता

274. श्वासः किं त्वरितागमात् पुलकिता कस्मात् प्रसादः कृतः
स्रस्ता वेण्यपि पादयोर्निपतनान्नीवी गमादागमात् ।
स्वेदार्द्रं मुखमातपेन गमितं क्षामा किमत्युक्तिभि-
र्दूति, म्लानसरोरुहाकृतिधरस्यौष्ठस्य किं वक्ष्यसि ॥

—*शीलाभट्टारिकायाः*

275. रजन्यामेतस्यां सुरतपरिवृत्तावनुचितं
मदीयं यद् वासः कथमपि हृतं तेन सुहृदा ।
त्वया प्रत्यानीतं निजवसनदानात् पुनरिदं
कुतस्त्वादृग् दूति, स्खलित-शमनोपायनिपुणा ।।

—*बीजाङ्कुरस्य*

अथ प्रेमगर्विता

276. यदि मम दयितः प्रयाति भूरिष्वपि वनितासु ततो विधिं दयेऽहम् ।
यदि बहुषु लतासु नैति भृङ्गः क्व नु मनुते महिमानमम्बुजिन्याः ।।

—*कस्यापि*

277. कथय कथमुरोजदामहेतोर्यदुपतिरेष चिनोति चम्पकानि ।
भवति करतले यदस्य कम्पः प्रियसखि मत्स्मृतिरेव मत्सपत्नी ।।

—*भानुकरस्य*

अथ सौन्दर्यगर्विता

278. भाविन्यो विदधत भागधेयभाजः केयूरं स्रजमवतंसमम्बुजातैः ।
धिग् दैवं मम तु विभूषणं विदूरे रोलम्बादधरनिवारणं पुमर्थः ।।

279. मा गर्वमुद्वह कपोलतले चकास्ति
कान्तस्वहस्तलिखिता तव मञ्जरीति ।
अन्यापि किं सखि न भाजनमीदृशीनां
वैरी न चेद् भवति वेपथुरन्तरायः ।।

280. कान्तिश्चन्द्रमसो मृगस्य नयने बाहू मृणालस्य ते
हंसानां गमनं सरोजवदने हेम्नो घटौ ते कुचौ ।
एतत्ते परकीयवस्तु सकलं नामैकमात्रं तव
मानं मा कुरु मानिनि प्रियतमे रूपाभिमानं प्रति ।।

अथ खण्डिता

281. किं किं वक्त्रमुपेत्य चुम्बसि बलान्निर्लज्ज लज्जा क्व ते
वस्त्रान्तं शठ मुञ्च-मुञ्च शपथैः किं धूर्त निर्वर्तसे।
खिन्नाहं तव रात्रिजागरवशात्तामेव याहि प्रियां
निर्माल्योज्झितपुष्पदामनिकरे का षट्पदानां रतिः॥

—शृङ्गारतिलकात्

282. अज्ञानेन पराङ्मुखीं परिभवादाश्लिष्य मां दुःखितां
किं लब्धं शठ दुर्णयेन नयता सौभाग्यमेतादृशम्।
पश्यैतद्दयिताकुचव्यतिकरासक्ताङ्गरागारुणं
वक्षस्ते मलतैलपङ्कमलिनैर्वेणीपदैरङ्कितम्॥

—अमरुकस्य

विप्रलब्धा

283. उत्तिष्ठ दूति यामो यामो यातस्तथापि नायातः।
याऽतः परमपि जीवेज्जीवितनाथो भवेत् तस्याः॥

—कङ्कस्य

284. चल सखि सम्प्रति सदनं संवृणु मदनं तथाहि जानीहि।
किं कुरुषे परपुरुषे परिणतिविरसे परं प्रेम॥

—भावमिश्रस्य

अथ उत्का

285. ज्ञातं ज्ञातिजनैर्विघुष्टमयशो दूरं गता धीरता
त्यक्ता ह्रीः प्रतिपादितोऽप्यविनयः साध्वीपदं प्रोज्झितम्।
लुप्ता चोभयलोकसाधुपदवी दत्तः कलङ्कः कुले
भूयो दूति, किमन्यदस्ति यदसावद्यापि नागच्छति॥

286. स्नानं वारिद-वारिभिर्विरचितं वासो घने कानने
शीतैश्चन्दनबिन्दुभिर्मनसिजो देवः समाराधितः ।
नीता जागरणव्रतेन रजनी व्रीडा कृता दक्षिणा
तप्तं किन्न तपस्तथापि स कथं नाद्यापि नेत्रातिथिः ॥

—भानुकरस्य

अथ स्वाधीनपतिका

287. लिखति कुचयोः पत्रं कण्ठे नियोजयति स्रजं
तिलकमलके कुर्वन् गर्वादुदस्यति कुन्तलान् ।
इति चटुशतैर्वारं वारं वपुः परितः स्पृशन्
विरहविधुरो नास्याः पार्श्वं विमुञ्चति वल्लभः ॥

—रुद्रस्य

288. अस्माकं सखि वाससी न रुचिरे ग्रैवेयकं नोज्ज्वलं
नो वक्रा गतिरुज्ज्वलं न हसितं नैवास्ति कश्चिन्मदः ।
किंत्वन्येऽपि जना वदन्ति सुभगोऽप्यस्याः पतिर्नान्यतो
दृष्टिं निक्षिपतीति विश्वमियता मन्यामहे दुःस्थितम् ॥

अथ अभिसारिका, साष्टधा, क्रमेणोदाहरणानि

[१] कामाभिसारिका

289. क्व प्रस्थितासि करभोरु घने निशीथे
प्राणाधिपो वसति यत्र जनः प्रियो मे ।
एकाकिनी कथय किं न बिभेषि बाले
नन्वस्ति पुंखितशरो मदनः सहायः ॥

290. रभसादभिसर्तुमुद्यतानां वनितानां सखि वारिदो विवस्वान् ।
रजनी दिवसोऽन्धकारमर्चिर्विपिनं वेश्म विमार्ग एव मार्गः ॥

—भानुकरस्य

[२] प्रेमाभिसारिका

291. छिद्रान्वेषणतत्परः प्रियसखि प्रायेण लोकोऽधुना
रात्रिश्चापि घनान्धकारबहुला गन्तुं न ते युज्यते ।
मा मैवं सखि वल्लभः प्रियतमस्तस्योत्सुका दर्शने
युक्तायुक्तविचारणा यदि भवेत् स्नेहाय दत्तं जलम् ॥

292. काश्मीरगौरवपुषामभिसारिकाणामाबद्धरेखमभितो रुचिमञ्जरीभिः ।
एतत्तमालदलनीलनिभं तमिस्रं तत्प्रेमहेमनिकषोपलतां प्रयाति ॥

[३] दिवाभिसारिका

293. प्रत्यष्टमि प्रतिचतुर्दशि देवयात्रा-
व्याजेन दिक्षु च विदिक्षु च सञ्चरन्त्यः ।
कन्याः कुरङ्गनयनाश्चटुलैरपाङ्गै-
रातन्वते रतिपतेरपि दीर्घमायुः ॥

—भैयाभट्टस्य

294. कुतुकाद् यथा यथायं लोकोऽनवकाशतामेति ।
यूनोर्मनसि मनोभूर्निजमवकाशं तथा तथा तनुते ॥

—नीलकण्ठशुक्लस्य

[४] सायमभिसारिका

295. नाम्बुजैर्न कुमुदैरुपमेयं स्वैरिणीजनविलोचनयुग्मम् ।
नोदये दिनकरस्य न चेन्दोः सायमेव विकसत्यनिशं यत् ॥

—कस्यापि

[५] तमोऽभिसारिका

296. उत्तंसः केकिपिच्छैर्मरकतवलयश्यामले दोःप्रकाण्डे
हारः सान्द्रेन्द्रनीलैर्मृगमदरचितो वक्त्रपत्रप्रपञ्चः ।
नीलाब्जैः शेखरश्रीरसितवसनता चेत्यभीकाभिसारे
सम्प्रत्येणेक्षणानां तिमिरभरसखी वर्तते वेषलीला ॥

—*राजशेखरस्य*

297. वातोद्धूतमुखी प्रनष्टतिलका तोयार्द्रनीलांशुका
मेघानां निनदेन भीतहृदया गत्वा प्रियस्याऽऽलयम् ।
द्वारं नेच्छति लज्जया प्रलपितुं देहीति वर्षाहता
पादौ नूपुरकर्दमप्रतिहतौ संशब्दयन्ती स्थिता ॥

298. प्राणेशमभिसरन्ती पथि स्खलन्ती सुपिच्छिले मुग्धा ।
अवलम्बनाय वारां धारासु करं प्रसारयति ॥

299 मार्गे पङ्कचिते घनेऽन्धतमसे निःशङ्कसञ्चारया
गन्तव्याद्य मया प्रियस्य वसतिर्मुग्धेति कृत्वा मतिम् ।
आजानूद्धृतनूपुरा करतलेनाऽऽच्छाद्य नेत्रे भृशं
कृच्छ्रेणाऽऽप्तपदस्थितिः स्वभवने पन्थानमभ्यस्यति ॥

300. एकतानसुरतत्वचिन्तया सिद्धतां ध्रुवमवाप्य पांशुता ।
अस्फुटाज्जगति दैवनिर्मितादन्धकारपटतोऽधुनाऽचलत् ॥

—*बालभारतस्य*

[६] ज्योत्स्नाभिसारिका

301. चन्द्रोदये चन्दनमङ्गकेषु विहस्य विन्यस्य विनिर्गतायाः ।
मनो निहन्तुं मदनोऽपि बाणान् करेण कौन्दान् विभराम्बभूव ॥

—*भानुकरस्य*

302. मल्लिकामाल्यधारिण्यः सर्वाङ्गीणार्द्रचन्दनाः ।
क्षौमवत्यो न लक्ष्यन्ते ज्योत्स्नायामभिसारिकाः ॥

303. कण्ठे मौक्तिकमालिकाः स्तनतटे काश्मर्यमच्छं रजः
सान्द्रं चन्दनमङ्गके वलयिताः पाणौ मृणालीलताः ।
तन्वी नक्तमियं चकास्ति शुचिनी चीनांशुके बिभ्रती
शीतांशोरधिदेवतेव गलिता व्योमाग्रमारोहतः ॥

—राजशेखरस्य

304. उरसि निहितस्तारो हारः कृता जघने घने
कलकलवती काञ्ची पादौ रणन्मणिनूपुरौ ।
प्रियमभिसरस्येवं मुग्धे त्वमाहतडिण्डिमा
यदि किमपरं त्रासोत्कम्पा दिशः समुदीक्षसे ॥

305. गाढान्धकारेष्वभिसारिकाणां
प्रतप्तचामीकरचारुभासाम् ।
रराज कान्तिः पथि कामिनीनां
सौदामिनीवाम्बुदगर्भमध्ये ॥

—लक्ष्मणभट्टस्य

[७] कुलाङ्गनाभिसारः

306. एकत्र कौलव्रतभङ्गशङ्का विदग्धताभङ्गभयं परत्र ।
इत्याकुलानां कुलकामिनीनां गतागतैरेव गता त्रियामा ॥

307. दक्षिणेन चरणेन देहली लङ्घिता दयितया प्रियादरात् ।
वामपादमवलम्ब्य संशयादाकुलीभवति हा कुलीनता ॥

308. आयातासि विमुञ्च वेपथुभरं दृष्टासि केनापि नो
नीलं चोलममुं विमुञ्च हरतु स्वेदं निशीथानिलः ।
इत्यन्तर्भयसन्नकण्ठमसकृद् यामीति तल्पं गता
जल्पन्ती परिरभ्यते सुकृतिभिः स्वैरं नवस्वैरिणी ॥

[८] अभिसारणादभिसारिका

309. निभृतं निभृतं निभालयन्त्या वरुणाशाभरणायितं पतङ्गम् ।
गुरुयन्त्रितयापि गोपवध्वा नयनान्तेन निमन्त्रितो मुकुन्दः ॥

310. एतस्मादस्माकं भृशमभिरामा गृहारामाः सुलभाः ।
सदासुमनसो निश्यपि स्त्रीभिर्यतोऽवचीयते कुसुमम् ॥

—भावमिश्रस्य

अथ सखीशिक्षा

311. गन्तुं यदि व्यवसितासि घने निशीथे
चेलाञ्चलेन तनुमावृणु मुग्धशीले ।
विद्युल्लता यदि पथि प्रतिरोधिनी स्या-
दप्रावृतैव कनकद्रवगौरिविच्छेः ॥

312. मन्दं निधेहि चरणौ परिधेहि वासो
नीलं पिधेहि वलयावलिमञ्चलेन ।
मा जल्प साहसिनि शारदचन्द्रकान्त-
दन्तांशवस्तव तमांसि समापयन्ति ॥

॥ इति गोविन्दजित्-संगृहीते सभ्यालङ्करणे सम्भोगशृङ्गारे सकलनायिकानिरूपणं नाम तृतीयो मरीचिः ॥

४

॥ चतुर्थो मरीचिः ॥

अथ शृङ्गाररसोपयोगिनो नायकभेदाः

●

तत्र अनुकूलः

313. सद्यः पुरी-परिसरेऽपि शिरीषमृद्वी
सीता जवात् त्रिचतुराणि पदानि गत्वा ।
गन्तव्यमस्ति कियदित्यसकृद् ब्रुवाणा
रामाश्रुणः कृतवती प्रथमावतारम् ॥

314. सत्यं मधुरो नियतं वक्रो नूनं कलाधरो दयितः ।
स तु वेद न द्वितीयामकलङ्कः प्रतिपदिन्दुरिव ॥

—गोवर्धनस्य

315. त्वं पीयूषमयूख मुञ्च शिशिरस्निग्धान् सुधासीकरां-
स्त्वं भोगीन्द्र विलम्बसे किमु फणाभोगैः शनैर्वीजय ।
त्वं स्वर्वाहिणि किञ्च सिञ्च सलिलैरङ्गैः शिरीषोपमैः
सेयं शैलसुता कठोरमहसः कान्त्या पथि क्लाम्यति ॥

—कस्यापि

अथ दक्षिणः

316. एतत् पुरः स्फुरति पद्मदृशां सहस्र-
मक्षिद्वयं कथय कुत्र निवेशयामि ।
इत्याकलय्य नययाम्बुरुहे निमील्य
रोमाञ्चितेन वपुषा स्थितमच्युतेन ॥

—भानुकरस्य

317. स्नाता तिष्ठति कुन्तलेश्वरसुता वारोऽङ्गराजस्वसु-
र्द्यूते रात्रिरियं जिता कमलया देवी प्रसाद्याऽद्य च।
इत्यन्तःपुरसुन्दरीः प्रति मया विज्ञाय विज्ञापिते
देवेनाप्रतिपत्तिमूढमनसा द्वित्राः स्थितं नाडिकाः॥

—*दर्पणस्य*

अथ धृष्टः

318. जल्पन्त्याः परुषं रुषा मम बलाच्चुम्बत्यसावाननं
गृह्णात्याशु करं करेण वहुशः सन्तर्ज्यमानोऽपि सन्।
आलीनां पुरतो दधाति शिरसा पादप्रणामं ततो
नो जाने सखि साम्प्रतं प्रणयिने कुप्यामि तस्मै कथम्॥

319. बद्धो हारैः करकमलयोर्द्वारतो वारितोऽपि
सायं ज्ञात्वा पुनरुपगतो दूरतो दत्तदृष्टिः।
तल्पोपान्ते कनकवलयं मुक्तमन्वेषयन्त्या
धृष्टो दृष्टः पुनरपि मया पार्श्वे एव प्रसुप्तः॥

अथ शठः

320. शठान्यस्याः काञ्चीमणिरणितमाकर्ण्य सहसा
यदाश्लिष्यन्नेव प्रशिथिलभुजग्रन्थिरभवः।
तदेतत् क्वाऽऽचक्षे घृतमधुमयत्वद्बहुवचो-
विषेणाऽऽघूर्णन्ती किमपि न सखी मे गणयति॥

321. तस्याः सान्द्रविलेपनस्तनयुगप्रश्लेषमुद्राङ्कितं
किं वक्षश्चरणानतिव्यतिकरव्याजेन गोपाय्यते।
इत्युक्ते क्व तदित्युदीर्य सहसा तत् सम्प्रमार्ष्टुं मया
साऽश्लिष्टा रभसेन तत्सुखवशात्तन्व्यास्तु तद्विस्मृतम्॥

—*अमरुकस्यैतौ*

अथ वैशेषिकः

322. गाढालिङ्गनपीडितस्तनयुगं स्विद्यत्कपोलस्थलं
संदष्टाधरमुक्तसीत्कृतमतिभ्रान्तभ्रु नृत्यत्करम् ।
चाटुप्रायवचो विचित्रभणितं घातैरुतैश्चाङ्कितं
वेश्यानां धृतिधाम पुष्पधनुषः प्राप्नोति धन्यो रतम् ॥

वचनव्यङ्ग्यसमागमो यथा

323. द्वे कमले ममपाणिसरोजे कोकनदं कनदं करभोरु ।
ब्रूहि किमिच्छसि पङ्कजनेत्रे कोकनदं कनदं करभोरु ॥

324 तमोजटाले हरिदन्तराले काले निशायास्तव निर्गतायाः ।
तटे नदीनां निकटे वनीनां घटेत शातोदरि कः सहायः ॥

—भानुकरस्य

चेष्टाव्यङ्ग्यसमागमो यथा

325. कान्ते कनकजम्बीरं करे किमपि कुर्वति ।
आगारलिखिते भानौ बिन्दुमिन्दुमुखी ददौ ॥

—भानुकरस्य

326. अथोत्तरस्यां दिशि खञ्जरीटमालोक्य कोऽपि स्मितमादधानः ।
कस्याश्चिदास्ये स्मितचारुभासि सम्भावयामास विलोचनानि ॥

—भानुकरस्य

327. तद्गल्लसंस्पर्शनधन्यजन्म स्रस्तं श्रुतेरब्जमवाप्य दैवात् ।
चुम्बत्यभीक्ष्णं मयि वीक्षितानि जयन्ति तस्याः स्मितमेदुराणि ॥

—नीलकण्ठस्य

अथानभिज्ञो नायकः

328. सामगानेन पूतं मे नोच्छिष्टमधरं कुरु ।
उत्कण्ठितासि चेत् कान्ते वामं कर्णं दशस्व मे ॥

329. अयि नखाङ्ककलङ्किनि पुस्तके त्वमसि नो मम वैरिणि वैरिणि ।
त्वयि निवेशितनिश्चलबुद्धिना यदमुना पशुना वयमुज्झिताः ॥

330. मातस्त्रयोदशि कुलव्रतपालिकासि
भूयास्त्वमेव दशपञ्चदिनानि यावत् ।
अस्माकमुत्थितमनोभवरागहन्त्री
मा भूत्कदाचिदपि हन्त गता द्वितीया ॥

331. उपनीय कमलकुडवं कथयति सभयश्चिकित्सके हलिकः ।
शोणं सोमार्धनिभं वधूस्तने व्याधिमुपजातम् ॥

—गोवर्धनस्य

332. यत्र तु कान्तः स्वान्तस्तत्र न दारा गुणोदाराः ।
यत्र न कान्तः स्वान्तस्तत्र तु दारा गुणोदाराः ॥

अथ शिशुनायक

333. अनवाप्तवयसि रहसि प्रेयसि पर्यङ्कमागते जयति ।
मदचपललोचनाया मूकः स्वप्नायते भावः ॥

334. सम्मुखं मुखविधुं न चुम्बतः
कुर्वतो न च कुचे करार्पणम् ।
पत्युरल्पवयसोऽन्तिकं गता
दैवमेव विनिनिन्द सुन्दरी ॥

अथ वृद्धनायकः

335. उदित्वरं स्तनवदनं लोचनमलिगर्वमोचनं सुदृशः ।
दृष्ट्वा विगतविचारं धातारं निन्दति स्थविरः ॥

अथ दूतीप्रेषणम्

336. प्रेषिता प्रियजनेन दूतिका यद्यलोकि पुरतोऽनुनायिका ।
अन्वितापि निजदूतिकाद्रुतप्रेरणेन मिथुनेन तन्मिथः ॥

337. उत्सुकापि हृदि वामलोचना काचन स्फुरति वाम-लोचना ।
निश्चितप्रियसमागमा सखीं न नियुङ्क्त किल मानमुद्रया ॥

—अमरचन्द्रस्यैते

अथ दूतीसन्देशः

338. अङ्गेऽनङ्गज्वरहुतवहश्चक्षुषि ध्यानमुद्रा
कण्ठे जीवः करकिसलये दीर्घशायी कपोलः ।
अंसे वेणी कुचपरिसरे चन्दनं वाचि मौनं
तस्याः सर्वं स्थितमपि न तु त्वां विना याति चेतः ॥

—क्षेमेन्द्रस्य

339. गृहीतं ताम्बूलं परिजनवचोभिः कथमपि
स्मरत्यन्तः शून्या सुभग विगतायामपि निशि ।
तथैवास्ते हस्तः कलितफणिवल्लीकिसलय-
स्तथैवास्यं तस्याः क्रमुकफलफालीपरिचितम् ॥

—बिल्हणस्य

340. द्वारि चक्षुरधिपाणि कपोलौ जीवितं त्वयि कुतः कलहोऽस्याः ।
कामिनामिति वचः पुनरुक्तं प्रीतये नवनवत्वमियाय ॥

—भारवेः

अथ नायकानयनम्

341. न च मेऽवगच्छति यथा लघुतां करुणां यथा च कुरुते स मयि ।
निपुणं तथैनमभिगम्य वदेरभिदूति काचिदिति संदिदिशे ॥

—किरातस्य

342. ईशमानय यथातथापि तं प्रैषयच्च वचसेति दूतिकाम् ।
आगतं सुकृतिनी कुतोप्यमुं काप्यलोकत च पादपातितम् ॥

—अमरचन्द्रस्य

अथ दूतीप्रशंसा

343. विरक्तमन्यप्रमदानुरक्तं
विमुक्त-दाक्षिण्यलवं शठञ्च ।
या संवृणीते ननु दूतिका सा
कोऽस्याऽस्तु सप्रेम्णि जने प्रकर्षः ॥

344. अपूजितैवास्तु गिरीन्द्रकन्या
किं पक्षपातेन मनोभवस्य ।
यद्यस्ति दूती सरसोक्तिदक्षा
दासः पतिः पादतले वधूनाम् ॥

—विल्हणस्य

अथ दूतीप्रश्नः

345. कथय निपुणे कस्मिन् दृष्टः कथं नु कियच्चिरं
किमभिलिखितं किं तेनोक्तं कदा स इहैष्यति ।
इति बहुविधप्रेमालापप्रपञ्चितविस्तराः
प्रियतमकथाः स्वल्पेऽप्यर्थे प्रयान्ति न नष्टताम् ॥

—कस्यापि

346. अलमलमघृणस्य तस्य नामा पुनरपि सैव कथा गतः स कालः ।
कथयकथय वा तथापि दूति, प्रियवचनं विदुषोऽपि माननीयम् ॥

—वासुदेवस्य

अथ दूत्युपहासः

347. त्वं किं निगूहसे दूति स्तनौ वक्त्रं च पाणिना ।
खण्डिता एव शोभन्ते शूराधरपयोधराः ॥

—कस्यापि

348. कषाय-राग-वचनं वीतरागोऽधरस्तव ।
विहारः कण्ठदेशश्च दूति प्रव्रजितासि किम् ॥

—कस्यापि

349. पार्श्वाभ्यां सप्रहाराभ्यामधरे व्रणखण्डिते ।
दूति सङ्ग्रामयोग्यासि न योग्या दूतकर्मणि ॥

—वररुचेः

अथ मधुपानम्

350. जातमन्मथमथो मदिराक्षीलोचनानि परिचुम्ब्य युवानः ।
तत्क्षणाप्तरुचयो मधुरासु स्वं मनो विदधिरे मदिरासु ॥

—बालभारतस्य

351. मूर्तिन्तमिव रागरसौघं ते परस्परसमर्पितवक्त्राः ।
अङ्गनासवमिषेण तदानीमाक्षिपन्त हृदयेषु युवानः ॥

—जयमाधवस्य

352. पिपिप्रिय ससस्वयं मुमुमुखासवं देहि मे-
ततत्यज दरं द्रुतं भभजभाजनं काञ्चनम् ।
इति स्खलितजल्पितं मदवशात् कुरङ्गीदृशः
प्रगे हसितहेतवे सहचरीभिरध्यैयत ॥

—कस्यापि

353. अन्तरन्तरधरश्च सुराश्च प्रेयसां रसयतामनुवेलम् ।
यत्तयोः किमु विवादपदेऽभूत् पेयताञ्च किमवाप न विघ्नः ॥

354. यद्वदत्यशनसन्निभमेवोद्गारमित्यनृतमेव बभाषे ।
गीतकं यदुद्गारि सुधावत् पीतसीधुभिरपि प्रमदादिभिः ॥

—अमरचन्द्रस्यैते

355. हावहारि हसितं वचनानां कौशलं दृशि विकारविशेषः ।
चक्रिरे भृशमृजोरपि वध्वाः कामिनेव तरुणेन मदेन ॥

—माघकवेः

356. भूषणं भृशमनन्यमनोज्ञं योषितामजनि यन्मद एव ।
चारुचीवरवराभरणानि भ्रंशभाञ्जि जगृहुर्न तदेताः ॥

357. उद्धतः पिहितकामधनुर्ज्याटङ्कृततिव्यतिकरोऽजनि यूनोः ।
भावनिर्भरपरस्परहस्तोत्तालतालसरसः परिहासः ॥

—अमरचन्द्रस्यैते

अथ द्यूतम्

358. प्रतिभूः शुको विपक्षे दण्डः शृङ्गारसंकथा सखिषु ।
पुरुषायितं पणो वा बाले तत्परिभाव्यदायः ॥

—गोवर्धनस्य

359. गाढालिंगनपूर्वमेकमनया द्यूते जितं चुम्बनं
तत् किञ्चित् परिरभ्य दत्तममुना प्रत्यर्पितं चानया ।
नैतत्तादृगिद न तादृशमिति प्रत्यर्पणप्रक्रमै-
र्यूनोश्चुम्बनमेकमेव बहुधा रात्रिर्गता तन्वतोः ॥

—उड्डीयकवेः

360. अद्य द्यूतजिताधरग्रहविधावीशोऽसि तत्खण्डना-
दाधिक्ये वद को भवानिति मृषाकोपाञ्चितभ्रूलता ।
सद्यः खिन्नकरान्तकुन्तलपरायत्तीकृतास्यस्य मे
मुग्धाक्षी प्रतिकृत्य तत् कृतवती द्यूतेऽपि यन्नार्जितम् ॥

—गोपादित्यस्य

361. आश्लेषे प्रथमं क्रमेण विजिते द्यूतेऽधरस्यार्पणे
नर्मद्यूतविधौ पणं प्रियतमे कान्तां पुनः पृच्छति ।
अन्तर्हास-निरोधसम्भृतरसोद्भेदस्फुरद्गल्लया
स्वैरं सारिविसारणाय निहितः स्वेदाम्बुगर्भः करः ।।

—कस्यापि

362. गाढालिङ्गनमेकवारमथवा बिम्बाधरास्वादनं
ग्राह्यस्त्वेकतरो ग्लहो विजयिना देवेन सख्योदिते ।
वक्षोजौ मुखपङ्कजञ्च सुदृशः पर्यायतः पश्यता
देवेनाप्रतिपत्तिमूढमनसा द्वित्राः स्थितं नाडिकाः ।।

—कस्यापि

363. आश्लेषचुम्बनरतोत्सवभूषणादि-
क्रीडादुरोदरपणः प्रतिभूरनङ्गः ।
भोगः स यद्यपि जये च पराजये च
यूनोर्मनस्तदपि वाञ्छति जेतुमेव ।।

—मुरारेः

।। इति गोविन्दजित्-संगृहीते सभ्यालङ्करणे सम्भोगशृङ्गारे
नायक-दूत्यादिनिरूपणं नाम चतुर्थो मरीचिः ।।



५

॥ पञ्चमो मरीचिः ॥

अथ शृङ्गारोद्दीपनानि



अथ सूर्यास्तवर्णनम्

364. वीक्ष्य रन्तुमतसः सुरनारीरात्तचित्रपरिधानविभूषाः ।
तत्प्रियार्थमिव यातुमथास्तं भानुमानुपपयोधि ललम्बे ॥

—*भारवेः*

365. हन्त सन्तमसमण्डलीसुहृत्पांसुलाकटुकटाक्षयष्टिभिः ।
प्रेर्यमाण इव पश्चिमाचले निष्पपात तुहिनेतरद्युतिः ॥

366. मण्डलीचलितपक्षिमण्डलीकैतवेन तरवो वितन्वते ।
यामिनीसमयशीतभीतितो मौलिबन्धमिव पश्य मौलिषु ॥

367. पश्चिमां भजति वल्लभे निजे रागभाजि शिशिरे दिनेश्वरे ।
ईर्ष्ययेव पतनार्थमुन्नताऽत्युन्नतान्यधिरुरोह दीधितिः ॥

368. क्वापि गन्तुमनसा दिनश्रिया यामिनीसमयकेलिलोलया ।
भानुरब्धितरणाय सज्जते न्यङ्मुखो घट इवार्धलम्बितः ॥

369. एष दुर्नियतिदण्डचण्डिमप्रेरितो बत रविर्गतच्छविः ।
स्थास्यति स्वयमतः पतन् कियत्कालमम्बरविलम्बिभिः करैः ॥

—*अमरचन्द्रस्यैते*

370. प्रतिकूलतामुपगते हि विधौविफलत्वमेति बहुसाधनता ।
अवलम्बनाय दिनभर्तुरभून्न पतिष्यतः करसहस्रमपि ॥

—*माघस्य*

371. यद्भिदे त्रिभुवनं भ्रमाम्यहं लब्धमेतदधुना क्व यास्यति ।
इत्यसौ खलु रुषारुणो रविस्तोयधौ तिमिरशङ्कयाऽपतत् ॥

372. प्राग्वितीर्य ककुभां मुखे मसीकूर्चकं निचिततद्रुचिस्पृशाम् ।
अन्वगायि दयितो दिनश्रिया सान्ध्यरागशिखि सेवया रविः ॥

अथ सन्ध्या

373. अत्र सान्ध्यसमये समागते यज्जनो भजति नम्रतां कृती ।
चित्रमत्र किमु मीलिताः करा यज्जलैरपि सरोरुहच्छलात् ॥

—अमरचन्द्रस्य

374. मृगाङ्कमागतं वीक्ष्य सन्ध्या नववधूरिव ।
दीपलेखामिषादेषा निर्विवेश निकेतनम् ॥

—भानुकरस्य

375. प्राञ्जलावपि जने नतमूर्ध्नि प्रेम तत्प्रवणचेतसि हित्वा ।
सन्ध्ययानुविदधे विरमन्त्या चापलेन सुजनेतरमैत्री ॥

—भारवेः

376. मौलौ पाटलपुष्पदामघटना सीमन्तसीमान्तरे
सिन्दूरप्रसरो ललाटपटले माञ्जिष्ठरत्नाङ्कुरः ।
गल्ले कुङ्कुमपत्रवल्लिरधरे लाक्षारसस्थापना
कर्णे पङ्कजकर्णिकेति सुदृशः सन्ध्यार्कभासोऽभवन् ॥

377. सैरन्ध्रीकरकृष्टकङ्कणरणत्कारध्वनिः सञ्चरद्-
दूतीसूचितसन्धिविग्रहविधिः सोल्लासलीलाधरः ।
वारस्त्रीजनसज्ज्यमानशयनः सन्नद्धपुष्पायुधः
श्रीखण्डद्रवधौतसौधतलिको रम्यः क्षणो वर्तते ॥

—अमरचन्द्रस्य

अथ सन्ध्याभिसारिका

378. नाम्बुजैर्नकुसुमैरुपमेयं स्वैरिणीजनविलोचनयुग्मम् ।
नोदये दिनकरस्य न चेन्दोः सायमेव विकसत्यनिशं यत् ।।

379. अभिसरणे मम शरणं तरुणि तदानीमयं जातः ।
इति कुन्तलकैतवतः शिरसो विदधामि तिमिरौघम् ।।

—*अमरचन्द्रस्य*

अथ सन्ध्यावायुः

380. क्वापि तापिदिवसार्धविह्वलोऽभिव्यलीयत सदागतिर्ध्रुवम् ।
साम्प्रतं दिनविराम-वामनो भानुधामनि शनैर्लसत्यसौ ।।

381. वासरान्त-शिशिरत्व-चारुणा मारुतेन गमितेव निर्वृतिम् ।
भानुताप-भव-खेद-भेदिना मीलदब्जनयना बभूव भूः ।।

—*अमरचन्द्रस्यैतौ*

अथ चक्रवाकविरहः

382. तीरात्तीरमुपैति रौति करुणं चिन्तां समालम्बते
किञ्चिद्ध्यायति निश्चलेन मनसा योगीव युक्तेक्षणः ।
स्वां छायामवलम्ब्य कूजति पुनः कान्तेति मुग्धः खगो
धन्यास्ते भुवि ये निवृत्तमदना धिग् दुःखितान् कामिनः ।।

—*कस्यापि*

383. भङ्क्त्वा भोक्तुं न भुङ्क्ते कुटिलबिसलताकोटिमिन्दोर्वितर्का-
त्ताराकारास्तृषार्तः पिबति न पयसां विप्रुषः पत्रसंस्थाः ।
छायामम्भोरुहाणामलिकुलशबलां वेत्ति सन्ध्यामसन्ध्यां
कान्ताविश्लेषभीरुर्दिनमपि रजनीं मन्यते चक्रवाकः ।।

—*कस्यापि*

384. वित्तप्राप्तमिव पद्मिनीपतेस्तापमस्य परदेशगामिनः ।
सौहृदाद् हृदयपञ्जरे परिक्षिप्य रक्षति रथाङ्गसञ्चयः ॥

—*अमरचन्द्रस्य*

अथ चक्रवाक्याः

385. एकेनाक्ष्णा प्रविततरुषा वीक्षते लम्बमानं
भानोर्बिम्बं जलधररुचा चापरेण स्वकान्तम् ।
अह्नश्छेदे दयितविरहाशङ्किनी चक्रवाकी
द्वौ सङ्कीर्णौ रचयति रसौ नर्तकीव प्रगल्भा ॥

—*चम्पकस्य*

अथ कमलिनीमीलनम्

386. ख्याता वयं समधुपा मधुकोषवत्य-
श्चन्द्रः प्रसारितकरो द्विजराज एषः ।
अस्मत्समागमकृतोऽस्य पुनर्द्वितीयो
मा भूत् कलङ्क इति सङ्कुचिता नलिन्यः ॥

—*कस्यापि*

अथ कुमुदिनीविकाशः

387. कलाधिनाथानयनाय सायं कुमुद्वतीप्रेषित एष भृङ्गः ।
किमिन्दुनालिङ्गय सरागमङ्के कृतः कलङ्कभ्रममातनोति ॥

—*वाणीविलासदीक्षितानाम्*

अथ दीपः

388. अब्धिपातिनि विरोचने जगल्लोचने निचितदुःखदुःखितः ।
न्यङ्मुखः सृजति पाणिघर्षणं दीपवर्तिजननच्छलाज्जनः ॥

389. दीपवर्तिततति-मीलितं स्त्रिया भाति पाणियुगमुद्यताङ्गुलि ।
विश्वविश्वजयिनश्चलाचलं सारचक्रमिव मारचक्रिणः ॥

390. एकतोऽपि भुवि भूरिशोऽभवन् दीपकादहह पश्य दीपकाः ।
अन्धकारनिधनाय भानुमन्मुक्तदिव्यविशिखादिवेषवः ॥

—अमरचन्द्रस्यैते

391. महद्भिरोघैस्तमसामभिद्रुतो भवेष्वसंमूढमतिर्भ्रमन् क्षितौ ।
प्रदीपवेषेण गृहे गृहे स्थितो विखण्ड्य देहं बहुधैव भास्करः ॥

—मेढस्य

अथ अन्धकारः

392. सूक्ष्मकादपि दिनान्धलोचनादल्पमप्यजनि यद् बहिस्तमः ।
वर्धते तदिह पश्य पांशुलाचक्रवालसुकृतैरिव क्रमात् ॥

393. तमस्ततौ पङ्कमग्नमिव मन्यमानया ।
पल्लवाद्बहिरुपेतयाप्यहो मन्दमन्दयधुनाभिसार्यते ॥

—बालभारतस्यैते

394. विश्वं चाक्षुषमस्तमेति हि तमः कैवल्यमौपाधिक-
प्राच्यादि-व्यवहार-बीज-विरहाद्दिङ्मात्रमेव स्थितम् ।
एह्यन्ते भयहेतवः पटुभिरप्यक्षान्तरैर्भाति च
ध्वान्तेनातिघनेन वस्तुवचसा ज्ञातः स्वरेणामुकः ॥

—मुरारेः

395. नो रविर्न च तमो न तमीशो न द्युतिर्ग्रहगणो न च सन्ध्या ।
यादृशी प्रथमतः किल सृष्टेस्तादृगेव भुवनश्रियमूहे ॥

396 रञ्जता नु विविधास्तरुशैला नामितं नु गगनं स्थगितं नु ।
पूरिता नु विषमेषु धरित्री संहृता नु ककुभस्तिमिरेण ॥

—भारवेरेतौ

अथ तमोऽभिसारिका

397. रतिरतितिमिरे शशाङ्कशङ्का फणिगणतो न भयं भयं मणिभ्यः।
प्रियसखि वनजन्तुषु प्रतीतिर्न तु मनुजेषु तमोऽभिसारिकाणाम् ॥

—भावमिश्रस्य

398. तद्द्वयोर्मणिविजृम्भितमेतन्न द्वयोरुपरि साहसभारः।
कामिनीचरणयोरभिसारे पल्लवीयति भुजङ्गमभोगः ॥

—परमानन्दस्य

अथ तारकोदयः

399. अम्बरविपिनमिदानीं तिमिरवराहोऽवगाहते जलधेः।
रोमसु यदस्य लग्नास्तारकजलबिन्दवो भान्ति ॥

—गणपतेः

400. निशाधिनाथस्य करावमर्शात् सम्मीलिताम्भोरुहलोचनायाः।
निशाङ्गनायाः कपटादुडूनां किं स्वेदबिन्दूत्कर आविरासीत् ॥

—लक्ष्मणस्य

अथ चन्द्रोदयः

401. उदयतटान्तरितमियं प्राची सूचयति दिङ् निशानाथम्।
परिपाण्डुना मुखेन प्रियमिव हृदयस्थितं रमणी ॥

—श्रीहर्षस्य

अथ कलोदयः

402. त्रिनयनजटावल्लीपुष्पं निशावदनस्मितं
ग्रहकिसलयं सन्ध्यानारीनितम्बनखक्षतम् ।
तिमिरभिदुरं व्योम्नः शृङ्गं मनोभवकार्मुकं
प्रतिपदि नवस्येन्दोर्बिम्बं सुखोदयमस्तु नः ॥

—*फल्गुहस्तिन्याः*

403. ओंकारो मदनद्विजस्य गगनक्रोडैकदंष्ट्राङ्कुर-
स्तारामौक्तिकशुक्तिरन्धतमस-स्तम्बेरमस्याङ्कुशः ।
शृङ्गारार्गलकुञ्चिका विरहिणीमानच्छिदा कर्त्तरी
सन्ध्यावारवधूनखक्षतिरियं चान्द्रीकला राजते ॥

—*महानाटकस्य*

404. चापयष्टिरिव मान्मथी पुरः सेयमभ्युदयते विधोः कला ।
तत्प्रसूनविशिखैरिवोडुभिर्भानुमद्भिरहिता दिशोऽन्धिताः ॥

अथ चन्द्रार्धम्

405. चान्द्रमर्धमुड्गुचिह्नमौषधीदीप्तिदीपभृतिपूर्वपर्वते ।
शातकुम्भमयकुम्भकर्परं सज्जकज्जलमिवेक्ष्यते दिवः ॥

406. अस्फुटैकलवमैन्दवं वपुः कस्य न स्मरमदं करोत्यदः ।
सेवितामरपतेव्रणत्रपागोपितार्धमिव चाननं दिशः ॥

—*बालभारतस्यैते*

अथ पूर्णचन्द्रः

407. ततः कुमुदनाथेन कामिनीगण्डपाण्डुना ।
नेत्रानन्देन चन्द्रेण माहेन्द्री दिगलङ्कृता ॥

—*वेदव्यासस्य*

408. स्वैरं कैरवकोरकान् विदलयन् यूनां मनो मोदय-
न्नम्भोजानि निमीलयन्मृगदृशां मानं समुन्मीलयन् ।
ज्योत्स्नां कन्दलयन् दिशो धवलयन्नम्भोधिमुद्वेलयन्
कोकानाकुलयंस्तमः कवलयन्निन्दुः समुज्जृम्भते ॥

—*कस्यापि*

409. अद्यापि स्तनशैलदुर्गविषमे किं कामनीनां हृदि
स्थातुं वाञ्छति मान एष धिगिति क्रोधादिवालोहितः ।
उद्यद्दूरतरप्रसारितकरः कर्षत्यसौ तत्क्षणात्
फुल्लत्कैरवकोशनिःसरदलिश्रेणीकृपाणं शशी ॥

—*कस्यापि*

410. पुरन्दरहरिद्दरीकुहरगर्भसुप्तोत्थित-
स्तुषारकरकेसरी गगनकाननं गाहते ।
मयूखनखरत्रुटत्तिमिरकुम्भिकुम्भस्थलो-
च्छलद्वहलतारकाकपटकीर्णमुक्तागणः ॥

—*कस्यापि*

अथ गगनारोहः

411. सौधमौलिमहिलाक्षिकैरवस्तोमक्लृप्तरुचिसङ्गमाशया ।
पश्य कैरवसुहृन्नभःशिखां मन्दमन्दमयमेति चन्द्रमाः ॥

412. कामिनीजन-विलोचनपातानुष्णबाष्पकलुषान् प्रतिगृह्णन् ।
मन्दमन्दमुदितः प्रययौ खं भीतभीत इव शीतमयूखः ॥

—*भारवेः*

अथ ज्योत्स्नातिशयः

413. सद्यः स्फाटिककेतकोदरदल-श्रेणी-श्रियं बिभ्रती
येयं मौक्तिकदामगुम्फनविधौ योग्यच्छविः प्रागभूत् ।
उन्नेया कलशीभिरञ्जलिपुटैर्ग्राह्या मृणालाङ्कुरैः
पातव्या च शशिन्यमुग्धविभवे सा चन्द्रिका वर्तते ॥

414. कैलासायितमद्रिभिर्विटपिभिः श्वेतातपत्रायितं
मृत्पिण्डेन दधीयितं जलनिधौ दुग्धायितं वारिभिः।
मुक्ताहारलतायितं व्रततिभिः शङ्खायितं श्रीफलैः
श्वेतद्वीपजनायितं जनपदैः प्रौढे शशाङ्कोदये ॥

—*त्रिविक्रमस्य*

415. गन्धान्धा मधुपा भ्रमन्ति कुमुदं नासाद्य पर्याकुलाः
पार्श्वस्थैरपि हन्त हंसमिथुनैरन्योन्यमुद्वीक्ष्यते।
किञ्चैते मदवारणाः सरभसं मुक्त्वा विरोधं मिथो
मन्दं मन्दमनुस्पृशन्ति करिणीमाशङ्कमानाः करैः ॥

—*कस्यापि*

416. ओषधीपतिरयं तमोमयं लोहपिण्डमिव विष्टपत्रयम्।
किञ्चिदौषधमिवाङ्कमावहन् किंनु रूप्यमयमेव निर्ममे ॥

—*बालभारतस्य*

417. किन्नु ध्वान्तपयोधिरेष कतकक्षोदैरिवेन्दोः करै-
रत्यच्छोऽयमधश्च पङ्कमखिलं छायापदेशादभूत्।
किं वा तत्करकर्तरीभिरभितो निस्तक्षणादुज्ज्वलं
व्योमैवेदमितस्ततश्च पतिताश्छायाच्छलेन त्वचः ॥

—*मुरारेः*

418. कपाले मार्जारः पय इति कराँल्लेढि शशिन-
स्तरुच्छिद्रप्रोतान् विसमिति करी संकलयति।
रतान्ते तल्पस्थान् हरति वनिताप्यंशुकमिति
प्रभामत्तश्चन्द्रो जगदिदमहो विप्लवयति ॥

—*भासस्य*

419. गगनविपिनसिंहः कामभूपातपत्रं
निखिलदिगवलानां कन्दुकः क्रीडनाय ।
मणिरिव रतिभर्त्तुः कार्मणः पार्वणोऽयं
जयति कुमुदबन्धुर्बन्धुरश्चन्द्रविम्बः ।।

—लक्ष्मणस्य

420. मुग्धा दुग्धधिया गवां विदधते कुम्भानधो वल्लवाः
कर्णे कैरवशङ्कया कुवलयं कुर्वन्ति कान्ता अपि ।
कर्कन्धूफलमुच्चिनोति शबरी मुक्ताफलाकाङ्क्षया
सान्द्रा चन्द्रमसो न कस्य कुरुते चित्तभ्रमं चन्द्रिका ।।

—कस्यापि

अथ वासकसज्जा

421. सज्जितसकलशरीरा क्षणे क्षणे किमपि गणयन्ती ।
उत्सवमिव तं दिवसं मनुते प्रियागमने मुग्धा ।।

—कस्यापि

422. कामयौवनवनेऽर्भखेलनस्तम्भयोर्मृगदृशामुरोजयोः ।
एणनाभिमयपत्रवल्लयो रेजिरे मदजलावलेपवत् ।।

423. धार्यतामिह दृढं त्वया त्वया बध्यतामिति कृतारवैर्मिथः ।
मेखलासु खलु नितम्बमण्डले बध्यते मृगदृशः सखीजनैः ।।

424. अङ्गुलीषु नवरत्न-मुद्रिका-भूषणानि पुनरुक्तभूषणम् ।
भूषितासु करजप्रभाङ्कुरैश्चक्रिरे रसवशान्मृगीदृशः ।।

425. सुभ्रुवो विशदचित्रकादिकं यद्यदेव विदधुः प्रसाधकम् ।
तत्तदानन-तुषारदीधितेश्चिह्नतामगमदिद्धदीधितेः ।।

426. इत्यवाप्तनवभूषणाः क्षणं वीक्ष्य रत्नमुकुरेऽङ्गमङ्गनाः ।
भासमान-रसभाव-भङ्ग्यो जज्ञिरे दयितदर्शनोत्सुकाः ।।

—अमरचन्द्रस्यैते

427. आद्यः कैरपि केलि-कौतुक-मनोराज्यैर्द्वितीयः पुन-
र्मल्लीकेसरचारुचम्पकनवाम्भोजस्रजां गुम्फनैः ।
काञ्चीकुण्डलहेमहारवलयन्यासैस्तृतीयस्ततो
नीतः सुन्दरि वासरस्य चरमो यामः कथं यास्पति ॥

—*भानुकरस्य*

428. विदूरे केयूरे कुरु करयुगे रत्नवलयै-
रलं गुर्वी ग्रीवाभरणलतिकेयं किमनया ।
नवामेकामेकावलिमयि मयि त्वं विरचये-
र्न पथ्यं नेपथ्यं बहुतरमनङ्गोत्सव-विधौ ॥

—*राघवानन्ददेवानाम्*

429. उल्लापयन्त्या दयितस्य दूतीं
वध्वा विभूषाश्च निवेशयन्त्याः ।
प्रसन्नता कापि मुखस्य जज्ञे
वेशश्रिया नु प्रियवार्त्तया नु ॥

—*कस्यापि*

430. द्वारिकायननियुक्तया दृशा वीक्ष्य पत्रमपि तोरणे चलत् ।
वल्लभोऽयमिति जात-सम्मदा नैकवारमुदतिष्ठदासनात् ॥

—*कस्यापि*

॥ इति भट्टगोविन्दजित् संगृहीते सभ्यालङ्करणे सम्भोगशृङ्गारे शृंगारोद्दीपन-निरूपणं नाम पञ्चमो मरीचिः ॥

६

॥ षष्ठो मरीचिः ॥

अथ सुरतोत्सवः

●

अथालिङ्गनम्

431. गाढालिङ्गनवामनीकृतकुचप्रोद्भिन्नरोमोद्गमा
सान्द्रस्नेहरसातिरेकविगलत्काञ्चीप्रदेशाम्बरा ।
मा मा मानद माति मामलमिति क्षामाक्षरोल्लापिनी
सुप्ता किं नु मृता नु किं मनसि मे लीना विलीना नु किम् ॥

—अमरुकस्य

432. सकङ्कणक्वणत्कारं धुनाना करपल्लवम् ।
अतलस्पर्शतां ब्रूते निमग्ना रसवारिधौ ॥

अथ चुम्बनम्

433. ईषन्मीलितदृष्टि मुग्धहसितं सीत्कारधारावशा-
दव्यक्ताकुलकेलिकाकुविकसद्दन्तांशुधौताधरम् ।
श्वासोत्सृप्तपयोधरोपरि परिष्वक्तं कुरङ्गीदृशो
हर्षोत्कर्षविमुक्तनिःसहतनोर्धन्यो धयत्याननम् ॥

अथाधरपानम्

434. दृशा सपदि मीलितं दशनरोचिषा निर्गतं
करेण परिवेपितं वलयकैरथाक्रन्दितम् ।
प्रियैः समदयोषितां ननु विखण्डचमानेऽधरे
परव्यसनकातराः किमिव कुर्वतां साधवः ॥

435. धम्मिल्लो भङ्गमेतु प्रविशतु तिलकः केशपाशान्धकारं
पत्राली गण्डपालिं त्यजतु च विवरं कर्णयोर्गन्तुकामा।
वामायाः कान्तदन्तक्षततिसहने त्वेक एवाधरोऽसौ
वीरः कामाहवेऽस्मिन्निति वदति चलन्नूपुरः क्वाणभङ्ग्या॥

—भानुपण्डितस्यैतौ

अथ नवोढाबाह्यसुरतारम्भः

436. समाकृष्टं वासः कथमपि हठात् पश्यति तदा
क्रमादूरुद्वन्द्वं जरठशरगौरं मृगदृशः।
तया दृष्टिं कृत्वा महति मणिदीपे निपुणया
निरुद्धं हस्ताभ्यां झटिति निजनेत्रोत्पलयुगम्॥

—कस्यापि

437. अंसाकृष्टदुकूलया सरभसं गूढौ भुजाभ्यां स्तनौ
आकृष्टे जघनांशुके कृतमधः संसक्तमूरुद्वयम्।
नाभीमूल-नितम्ब-चक्षुषि तया व्रीडानताङ्ग्या प्रिये
दीपः फूत्कृतिवातवेपितशिखः कर्णोत्पलेनाहतः॥

—कर्णोत्पलस्य

438. पटालग्ने पत्यौ नमयति मुखं जातविनया
हठाश्लेषं वाञ्छत्यपहरति गात्राणि निभृतम्।
न शक्नोत्याख्यातुं स्मितमुखसखीदत्तनयना
ह्रिया ताम्यत्यन्तः प्रथमपरिहासे नववधूः॥

—अमरुकस्य

439. दृष्टा दृष्टिमधो दधाति कुरुते नालापमालापिता
शय्यायां परिवृत्य तिष्ठति बलादालिङ्गिता वेपते।
निर्यान्तीषु सखीषु वासभवनान्निर्गन्तुमेवेहते
जाता वामतया प्रियस्य नितरां प्रीत्यै नवोढा प्रिया॥

—श्रीहर्षस्य

440. रक्षामालिकया बाले बद्धया किं प्रयोजनम् ।
अवश्यं भाविनावेतौ कचग्रह - कुचग्रहौ ॥

—कस्यापि

441. भ्रूवल्ली तव कार्मुकं किल जनो यत्प्रेक्षणात् कम्पते
दृक् तीक्ष्णो विशिखः करोति हृदयं यूनाञ्च यो जर्जरम् ।
पक्षः पञ्चशरः पुनस्त्रिजगतां जेता तथापि प्रिये
मुग्धे किं रतिसंगराय कुरुषे व्यर्थं मनः कातरम् ॥

—भावमिश्रस्य

442. कान्ते नितान्तं दयिताकुचान्तचेलाञ्चले कर्षति हर्षमुग्धे ।
बभार बाला नमितास्यहास्यलेशापदेशादपरं निचोलम् ॥

443. उरोरुहाम्भोरुहदर्शनाय विमुञ्चतः कञ्चुकबन्धनानि ।
आनन्दनीराकुललोचनस्य प्रियस्य जातो विफलः प्रयासः ॥

—लक्ष्मणस्यैतौ

अथ बलात्कारः

444. करकिसलयमूलं धुन्वतीनां स धन्यः
श्रवणपथमनल्पं यस्य पुंसः प्रविष्टाः ।
नवरतपरिरम्भे बालसीमन्तिनीनां
अहह ननन मामा मुञ्च मुञ्चेति वाचः ॥

445. सङ्गमेच्छुरपि कापि नवोढा श्लिष्यते न न न नेति वदन्ती ।
भीपदे वहतु कम्पि शरीरं हृष्टरोम वपुरस्य रसाय ॥

—बालभारतस्य

446 मधुरिम्णि तन्वि सुधयापि कथं तुलयाम्यहं, तव नकारममुम् ।
यदनुग्रहादहह ते सुदति स्वदतेतरामधरबिम्बमपि ॥

447. स्मितश्रीसादृश्यं विरचयतु चन्द्रातपरुचिः
सुधेयं वा बिम्बाधरमधुरिमाणं कलयतु ।
चमत्कारं कुर्वन् कमपि वदनात् तेऽयमुदितो
नकारो लब्धव्यः शशिनि दयिते कुत्र कथय ॥

—नीलकण्ठशुक्लस्यैतौ

448. स्फुरन्मुक्ताहारस्तरलतरताटङ्कयुगलं
तुलाकोटिः काञ्ची न भवति तथा कामुकमुदे ।
यथा रत्यारम्भे दृढतरपरीरम्भसमये
नकारोऽलङ्कारो जयति वदनेन्दौ मृगदृशः ॥

—कस्यापि

अथ मध्याबाह्यसुरतारम्भः

449. अन्योन्यस्य निरीक्षणादपगता नेत्रान्मुखे ह्रीः स्थिता
संलापाद्वदनं विहाय कुचयोः सीमानमालिङ्गिता ।
गाढालिङ्गनतः पुनः स्तनयुगं संत्यज्य नीवीं गता
पत्युस्तत्र गते करे किमभवत् तस्या न जानीमहे ॥

—भावमिश्रस्य

अथ प्रौढाबाह्यसुरतारम्भः

450. मदानने चुम्बनलालसस्य प्रियस्य संस्पृष्टकुचस्थलस्य ।
नीवीषु भावी करसन्निवेशस्तद्यामिनी यामिनि नैव भूयाः ॥

—लक्ष्मणस्य

अथ बाह्यसुरतप्रशंसा

451. अन्तःस्मितोल्लासि विलोचनञ्च
कौटिल्यसंसर्गजुषो गिरश्च ।
निषेधगर्भं परिरम्भणञ्च
रतं तदन्यानि विडम्बनानि ॥

—नीलकण्ठशुक्लानाम्

452. ताम्बूलाशनमाश्लेषः कथाश्च क्रमशो मिथः ।
एतदेव रतं पुंसां रतं शिष्टं पशोरपि ।।

—भैयाभट्टानाम्

अथ सुरतम्

453. सुरताय नमस्तस्मै जगदानन्दहेतवे ।
आनुषङ्गि फलं यस्य भोजराज भवादृशाः ।।

—भोजप्रबन्धस्य

454. नरैर्विफलजन्मभिर्गिरिदरी न किं सेव्यते
न चेच्छ्रवणगोचरीभवति जातुचिज्जन्मनि ।
कपोतरवमाधुरी-विरचनानुकारादरो
रतौ लघुकृशोदरीवचनरीतिकाकुध्वनिः ।।

—लक्ष्मणस्य

455. सुरते च समाधौ च मनो यत्र न लीयते ।
ध्यानेनापि हि किं तेन भावेन सुरतेन वा ।।

—कस्यापि

456. यत्र न मदनविकारः सद्भावसमर्पणञ्च गात्राणाम् ।
तस्मिन्नुद्धतभावे पशुकर्मणि पशव एव रज्यन्ते ।।

—कस्यापि

457. प्रतिक्षणसमुल्लसन्नवकलाकलापान्वित-
क्षपाकरविलोकने यदि तवास्ति कौतूहलम् ।
विलोकय तदा सखे सुरतसङ्गरालोकन-
प्रहृष्टवनितामुखं निविडकञ्चुकोत्तारणे ।।

—भट्टसोमेश्वरस्य

अथ स्वकीयारतप्रशंसा

458. प्राङ् मा मेति मनोरथागतगुणं जाताभिलाषं ततः
सव्रीडं तदनु श्लथोद्यममतः प्रत्यस्तधैर्यं पुनः ।
प्रेमार्द्रस्पृहणीयनिर्भरहतक्रीडाप्रगल्भं ततो
निःसङ्गाङ्गविकर्षणाधिकसुखं रम्यं निजस्त्रीरतम् ॥

अथ परकीयारतप्रशंसा

459. न बन्धूकं तावज्जयति न सुधाया मधुरता-
मधस्तादाधत्ते परिभवति नो पल्लवमपि ।
विशेषो नाप्येष स्फुरति परकीयाधर इह
स्वकीयायाः कस्मादधिकमधरात् प्रेम तनुते ॥

—नीलकण्ठशुक्लस्य

460. इन्दुर्यत्र न निन्द्यते न मधुरं दूतीवचः श्रूयते
नोच्छ्वासा हृदयं दहन्त्यशिशिरा नोपैति कार्श्यं वपुः ।
स्वाधीनामनुकूलिकां स्वगृहिणीमालिङ्ग्य यत् सुप्यते
तत् किं प्रेम गृहाश्रमव्रतमिदं कष्टं समाचर्यते ॥

—कस्यापि

461. शङ्काशृङ्खलितेन यत्र नयनप्रान्तेन न प्रेक्ष्यते
केयूरध्वनिभूरिभीतिचकितं नो यत्र चाश्लिष्यते ।
नो वा यत्र शनैरलग्नदशनं बिम्बाधरः पीयते
नो वा यत्र पिधीयते च मणितं तत् किं रतं कामिनोः ॥

—भानुकरस्य

462. उक्तं यत् कृपणं वचो विरचितो भूयान् वसूनां व्ययः
सोढाः किञ्च वियोगवज्रततयो दूती मुहुः प्रेषिता ।
बद्धो यत् प्रणयाञ्जलिर्विनिहिते यद्बाष्पधौते दृशौ
निष्पीयाधरपल्लवं मृगदृशः सर्वं सखे विस्मृतम् ॥

—कस्यापि

463. सव्रीडार्धनिरीक्षणं यदुभयोर्यद् दूतिकाप्रेषण-
मद्य श्वो भविता समागम इति प्रीतिप्रसादश्च यः ।
सम्प्राप्ते तु समागमे सरभसं यच्चुम्बनालिङ्गनं
तत् कामस्य फलं तदेव सुरतं शेषः पशूनां विधिः ॥

—*कस्यापि*

अथ सामान्यरतप्रशंसा

464. ईर्ष्याञ्जलिः स्त्रीषु न नायकस्य
निःशङ्ककेलिर्न पराङ्गनासु ।
वेश्यासु चैतद् द्वितयं प्ररूढं
सर्वस्वमेतास्तदहो स्मरस्य ॥

—*रुद्रस्य*

अथ रतम्

465. आक्षिपन् शयनमूर्धनि चक्षुः सुभ्रुवः सुखवशेन यदैव ।
निन्यिरे स्वयमुदस्य कराभ्यां तत्र ताः खलु तदैव हृदीशैः ॥

—*अमरचन्द्रस्य*

466. आकाशे नटनं सरोरुहयुगे मञ्जीरमञ्जुध्वनिः
शीतांशौ कलकूजितं किसलये पीयूषपानोत्सवः ।
स्वर्णक्षोणिधरे नखात् परिभवो ध्वान्ते कराकर्षणं
रम्भायां रशनारवस्तरुणयोः पुण्यानि मन्यामहे ॥

—*भानुकरस्य*

467. हारस्त्रुट्यति कङ्कणं निपतति स्रक्कौमुदी क्लिश्यति
ध्वान्तं धावति सीत्करोति रजनीजानिर्वलिर्भज्यते ।
काञ्ची क्षुभ्यति काञ्चनक्षितिधरे किञ्च क्षतं न्यञ्चति
प्रारम्भे सुरताहवस्य विजयी देवो मनोभूरभूत् ॥

—*भानुकरस्य*

468. नैषा वेगं मृदुतरतनुस्तावकीनं विषोढुं
शक्ता, नैनां चपल ! नितरां खेदयेन्दीवराक्षीम् ।
रत्यभ्यासं विदधत इति प्राणनाथस्य गत्वा
कर्णोपान्ते निभृतनिभृतं नूपुरं शंसतीव ।।

—धूर्तस्य

469. बाला तन्वी मृदुरियमिति त्यज्यतामत्र शङ्का
दृष्टा काचिद् भ्रमरभरतो मञ्जरी भज्यमाना ?
तस्मादेषा रहसि भवता निर्दयं पीडनीया
मन्दाक्रान्ता विसृजति रसं नेक्षुयष्टिः समग्रम् ।।

—विकटनितम्बायाः

470. छिन्नहारमणिभिः क्षितिपातादुच्छलद्भिरभितः सुरतेषु ।
नृत्यते स्म कृतकृत्यमनोभूः पुष्पमार्गणगणैरिव यूनाम् ।।

—बालभारतस्य

अथ विपरीतरतम्

471. व्यालोलामलकावलीं सकुसुमां बिभ्रच्चलत्कुण्डलं
किञ्चिन्मृष्टविशेषकं तनुतरैः स्वेदाम्भसां सीकरैः ।
तन्व्या यत् सुरतान्तताान्तनयनं वक्त्रं रतिव्यत्यये
तत् त्वां पातु चिराय किं हरिहरब्रह्मादिभिर्दैवतैः ।।

—अमरुकस्य

472. चलत्कुचं व्याकुलकेशपाशं
स्विद्यन्मुखं सीत्कृतमन्दहासम् ।
पुण्यातिरेकात् पुरुषा लभन्ते
पुंभावमम्भोरुहलोचनायाः ।।

—कस्यापि

473. प्रशान्ते नूपुरारावे श्रूयते मेखलाध्वनिः ।
कान्ते नूनं परिश्रान्ते कामिनी पुरुषायते ।।

—कस्यापि

474. मुग्धे ! तवास्मि दयिता पुरुषो भव त्व-
मित्युक्तया नहि नहीति शिरोऽवधूय ।
स्वस्मात् करात् प्रियतमे वलयं क्षिपन्त्या
वाचं विनाप्युपगमः कथितो मृगाक्ष्या ।।

—कस्यापि

475. साक्षादभूत् स्वयम्भूरथ मुक्तास्तिमिरसम्भाराः ।
प्रणनाम शीतरोचिः स्तवपाठं मेखला विदधाति ।।

—भानुकरस्य

476. यद्यदैहत हृदैव हृदीशस्तत्तदप्रथितमेव वितेने ।
तादृश-प्रसर-तुष्ट-मनोभूदत्तदिव्यनयनेव नताङ्गी ।।

477. स्मितरुचिरुचिरार्द्रं मन्दसीत्कारमन्द्रं
करुणवचनमूचुर्मन्दमित्यङ्गनाः यत् ।
समजनि दयितानां बाढमुत्साहहेतोः
सरभसरतलीला - निर्दयानां तदेव ।।

478. क्लृष्टाम्बराणि भृशमुत्सुकता - गृहीत-
वासोर्विपर्यय - विलोक - मृदुस्मितानि ।
व्रीडाविकुञ्चित - विलोल - विलोचनानि
यूनां - रतान्तललितानि महोत्सवोऽभूत् ।।

—अमरचन्द्रस्यैते

479. रसावेशोऽध्वर्युर्विलसितगणः सभ्यनिवहो
युवा यज्वा यस्मिन्नपि च शमिता शम्बररिपुः।
त्रपामेधे तस्मिन् कुतुकमिदमालोकि निखिलै-
र्निखातोऽन्तःकुण्डं यदभजत यूपः फलमिदम्॥

—चिमनीशतकात्

अथ रतश्रान्तिः

480. रतिरभसनितान्तश्रान्तकान्ताकुचान्त-
श्चलदमलकराग्रा नाभिदेशेष्वधोऽपि।
स्मितमधुरमुखीनां क्षीणनेत्रोत्पलाना-
मधरमधु वधूनां भाग्यवन्तः पिबन्ति॥

—शार्ङ्गधरस्य

481. उपरि निपतितानां स्रस्तधम्मिल्लकानां
मुकुलितनयनानां किञ्चिदुन्मीलितानाम्।
सुरत-जनित-खेद-स्विन्नगण्डस्थलाना-
मधरमधु वधूनां भाग्यवन्तः पिबन्ति॥

—भर्तृहरेः

अथ रतान्तनिद्रा

482. मत्तेभकुम्भपरिणाहिनि कुङ्कुमार्द्रे
कान्तापयोधरयुगे रतिखेदखिन्नः।
वक्षो निधाय भुजपञ्जरमध्यवर्ती
धन्यः क्षपां क्षपयति क्षणलब्धनिद्रः॥

—भर्तृहरेः

483. मिश्रितोरु मिलिताधरं मिथः, स्वप्नवीक्षितपरस्परक्रियम्।
तौ ततोऽनु परिरम्भसम्पुटैः पीडनां विदधतौ निदद्रतुः॥

—श्रीहर्षस्य

अथ निशीथरतम्

484. शमितनिखिलदीपे सुप्तनिद्रालुलोके
रतपरवशचित्ता मध्यरात्रे प्रबुद्धाः ।
प्रथमसुरतखिन्ना बालिका बोधयन्तो
दृढतरपरिरम्भैः कामुकाः खेदयन्ति ॥

—शार्ङ्गधरस्य

अथ प्रभातानुनयः

485. गतप्राया रात्रिः शशिमुखि ! शशी शीर्यत इव
प्रदीपोऽयं निद्रावशमुपगतो घूर्णत इव ।
प्रणामान्तो मानस्तदपि न जहासि क्रुधमहो,
कुचप्रत्यासत्त्या हृदयमपि ते चण्डि ! कठिनम् ॥

—कस्यापि

486. कृशोदरि ! निशा कृशा तदपि ते न मानः कृशः
प्रसन्नमिदमम्बरं तदपि न प्रसन्नं मनः ।
पुरोदिगनुरागिणी तदपि ते न रागोदयो
रटन्ति चरणायुधास्तदपि मौनमालम्बसे ॥

—कस्यापि

487. क्षीणांशुः शशलाञ्छनः शशिमुखि ! क्षीणो न कोपस्तव
स्मेरं पद्मवनं मनागपि न ते स्मेरं मुखाम्भोरुहम् ।
पीतं श्रोत्रपुटेन षट्पदरुतं पीतं न ते जल्पितं
रक्ता पूर्वदिगङ्गना रविकरैर्नाद्यापि रक्तासि किम् ॥

—कस्यापि

488. कृत्वा विग्रहमश्रुपातकलुषं शय्यासनादुत्थिता
कोपाच्चापि विमुच्य गर्भभवनद्वारं रुषा प्रस्थिता ।
दृष्ट्वा चन्द्रमसं प्रभावरहितं प्रत्यूषवाताहता
हा ! रात्रिस्त्वरितं गतेति पतिता कान्ता प्रियस्योरसि ॥

—*कस्यापि*

489. आश्लेषशेषा रतिरङ्गनानामामोदशेषा कुचकुंकुमश्रीः ।
तूणीरशेषः कुसुमायुधोऽपि प्रभातशेषा रजनी बभूव ॥

—*कस्यापि*

परकीयानिर्गमवर्णनम्

490. आद्ये जग्मुषि ताम्रचूडरटिते श्रोत्रे प्रवुद्धा जवात्
किञ्चिद्वासवदिङ्मुखं प्रविकसद् दृष्ट्वा गवाक्षाध्वना ।
सन्त्रासेन समीरिता प्रियतमप्रेम्णाऽवरुद्धा शनै-
रुत्थानोपनिवेशनानि कुरुते तल्पे मुहुः पांसुला ॥

—*कस्यापि*

491. गुरुत्रासादासादितभवदुपालम्भवचसां
मुहुः स्मारं स्मारं कथमपि निशीथे समगमि ।
इदानीं मुञ्च त्वं पुनरपि समेष्यामि समभू-
दुषःकालीनोऽयं चटुलचटकालोकलकलः ॥

—*कस्यापि*

अथ वेश्यानिर्गमः

492. लुलितनयनताराः क्षामवक्त्रेन्दुबिम्बा
रजनय इव निद्राक्लान्तनीलोत्पलाक्ष्यः ।
तिमिरमिव दधानाः स्रंसिनः केशपाशा-
नवनिपतिगृहेभ्यो यान्त्मूर्वारवध्वः ॥

—*माघकवेः*

अथ स्वीयानिर्गमः

493. प्राची कुङ्कुमरागपिञ्जरनिभा चन्द्रोऽपि दूरं गतो
दीपः पाण्डुरताश्च याति गगने नष्टप्रभास्तारकाः ।
वातो वाति सुगन्धिपङ्कजरजाः प्रह्लादिताः कोकिलाः
कण्ठे गाढ-निगूहनं त्यज सखे ! सूर्योदयो वर्तते ।।

—कस्यापि

अथ रतान्तोत्थानम्

494. करे वामे वासस्तदपरकरे हारलतिकां
वहन्त्या बिम्बोष्ठे पतिदशनदत्तव्रणपदम् ।
परिम्लानां मालां शिरसि शशिखण्डं स्तनतटे
रतान्तोत्तिष्ठन्त्या जगदपि न मूल्यं मृगदृशः ।।

—कस्यापि

495. प्रियकृतपटस्तेयव्रीडाविडम्बनविह्वलां
किमपि कृपणालापां बालां विलोक्य ससंभ्रमः ।
अपि विचलितस्कन्धावारो गते सुरताहवे
त्रिभुवनमहाधन्वी स्थाने न्यवर्तत मन्मथः ।।

—अमरुकस्य

496. नेपथ्यादपि राजते हि नितरां व्यालुप्तभूषा तनुः
सम्भोगश्रममीलितं विजयते चक्षुः कटाक्षादपि ।
गाढालिङ्गनकौतुकादपि नवं दोर्वल्लिविस्रंसनं
प्रीत्यालापरसादपि प्रियतरं मौनं कुरङ्गीदृशः ।।

—हरिहरस्य

497. शान्ते मन्मथसंगरे रणभृतां सत्कारमातन्वती
वासोऽदाज्जघनस्य पीनकुचयोर्हारं श्रुतेः कुण्डलम् ।
बिम्बोष्ठस्य सुवीटिकां सुनयना पाण्यो रणत्कङ्कणं
पश्चाल्लम्बिनि केशपाश-निचये युक्तो हि बन्धक्रमः ।।

—कस्यापि

498. स्मर - समरविमर्द - व्याहृतानाममीषां
स्तनजघनकचानां साधुसंस्कारवादः ।
प्रसभमभिगता या त्वां परित्यज्य लज्जा
वहसि हृदि पुनस्तां तन्न युक्तं मृगाक्षि ॥

—*कस्यापि*

499. एणीदृशः पाणिपुटेन रुद्धा
वेणी विरेजे शयनोत्थितायाः ।
सरोजकोशादिव निःसरन्ती
श्रेणी घनीभूतमधुव्रतानाम् ॥

—*कस्यापि*

500. प्रियायाः प्रत्यूषे गलितकवरीबन्धनविधा-
वुदञ्चद्दोर्वल्लीदरचलित - चेलाञ्चलमुरः ।
घनाकूते पश्यत्यथ मयि समन्दाक्षहसितं
नमन्त्यास्तद्रूपं नहि लिखितुमीशो विधिरपि ॥

—*कस्यापि*

501. निर्यान्त्या रतिवेश्मनः परिणतप्रायां विलोक्य क्षपां
गाढालिङ्गनचुम्बनानि बहुशः कृत्वाऽप्यसन्तुष्टया ।
एकं भूमितले निधाय चरणं तल्पे प्रदायापरं
तन्वङ्ग्या परिवर्तिताङ्गलतया प्रेयांश्चिरं चुम्बितः ॥

—*कस्यापि*

502. धम्मिल्लं परिबध्नती नखमुखैः सीमन्तमातन्वती
पश्यन्ती नखरोत्सवं स्तनतटे सव्यापसव्यं मुहुः ।
नाभीसीमनि कुञ्चिताङ्गुलिदलं नीवीभरं रुन्धती
शय्यागारविनिर्गताऽपि हृदयान्नाद्यापि निष्क्रामति ॥

—*कस्यापि*

अथानन्तररात्रिवृत्तान्ताविष्करणम्

503. दम्पत्योर्निशि जल्पतोर्गृहःशुकेनाकर्णितं यद्वच-
स्तत् प्रातर्गुरुसन्निधौ निगदतस्तस्यैकतारं वधूः ।
कर्णालम्बितपद्मरागशकलं विन्यस्य चञ्चूपुटे
व्रीडार्ता प्रकरोति दाडिमफलव्याजेन वाग्बन्धनम् ॥

—अमरुकस्य

504. प्रिये ! प्रसीदेति वचः शुकेरितं
निशम्य नाथो भवनाद्विनिर्गतः ।
प्रिया ह्रिया क्षोणिमिवाविशत्ततो
रुषा सपत्नी ज्वलिताऽहसत् सखी ॥

—भावमिश्रस्य

505 किमपि कान्तभुजान्तरवर्तिनी कृतवती यदियं कलभाषिणी ।
तदनुकृत्य गिरा गुरुसन्निधौ ह्रियमनीयत सारिकया वधूः ॥

—कस्यापि

॥ इति श्रीमद्गोविन्दजित्-संगृहीते सभ्यालङ्करणे सम्भोगश्रृङ्गारे
रतवर्णनं नाम षष्ठो मरीचिः ॥



७

॥ सप्तमो मरीचिः ॥

अथ षड्ऋतुवर्णनम्



अथ प्रभातवर्णनम्

506. तमोभिः पीयन्ते गतवयसि पीयूषवपुषि
ज्वलिष्यन्मार्तण्डोपलपटलधूमैरिव दिशः ।
सरोजानां कर्षन्नलिमयमयस्कान्तमणिवत्
क्षणादन्तः शल्यं तपति पतिरद्यापि न रुचाम् ॥

—*मुरारेः*

507. व्रज रजनि सरोज स्मेरतामेहि मौनं
कुवलय कलय द्राक् चापलं मुञ्च वार्धे ।
परिहर दिवमिन्दो कोक संश्लिष्य कोकी-
मिति जगति मृदङ्गोऽताडि सूर्याज्ञयेव ॥

508. व्रजति रजनिरेषा कामधुक् कामिनीना-
मुदयति दिनमेतद् विप्रयोगप्रयोगः ।
त्यजत झटिति मानं, मानिनीनामिवेत्थं
दिशि विदिशि दिदेशोद्दामगीस्ताम्रचूडः ॥

—*अमरचन्द्रस्यैतौ*

509. भिन्दानः सुन्दरीणां पतिषु रुषमयं हर्म्यपारावतेभ्यो
वाचालत्वं दधानः कवितृषु कविताप्रातिभं सन्दधानः ।
प्रातस्त्यस्तूर्यनादः स्थगयति गगनं मांसलः पांशुतल्पा-
दस्वल्पादुत्थितानां नरवरकरिणां शृङ्खलाशिञ्जितेन ॥

—*राजशेखरस्य*

510. अहनि युगसहस्रं तत् किमद्यापि भासा-
मुदयति दयितोऽस्यां नेति जातप्रकोपैः ।
रथचरणविहङ्गै रीक्षितेवारुणाभै-
श्चिरमलभत ह्यग्नेः शोणतां वासवाशा ॥

—*अमरचन्द्रस्य*

511. अभूत् प्राची पिङ्गा रसपतिरिव प्राश्य कनकं
कलाहीनश्चन्द्रो बुधजन इव ग्राम्यसदसि ।
क्षणात् क्षीणास्तारा नृपतय इवानुद्यमपरा
न दीपा राजन्ते द्रविणरहितानामिव गुणाः ॥

—*भोजप्रबन्धात्*

512. चरमगिरिकुरङ्गीशृङ्गकण्डूयनेन
स्वपिति सुखमिदानीमङ्कमिन्दोः कुरङ्गः ।
परिणतरविगर्भव्याकुला पौरुहूती
दिगपि घनकपोती-हुंकृतैः कुप्यतीव ॥

513. धुरि मधुरिमभाजां कौमुदी हन्त ! लभ्या
क्व पुनरपि गतेऽस्मिन्नोषधीनामधीशे ।
इति चरुनिचयान्तः संग्रहं शीघ्रमस्या
व्यतनुत जनतासौ धेनुदुग्धच्छलेन ॥

514. दधिमथनविलोलल्लोदृग्वेणिदम्भा-
दयमदयमनङ्गो विश्वविश्वैकजेता ।
परपरिभवकोपत्यक्तबाणः कृपाण-
श्रममिव दिवसादौ व्यक्तशक्तिर्व्यनक्ति ॥

—*बालभारतस्यैते*

515. पुरुहूतदिगङ्गनाप्रसूते रविमुद्दामसुतं चिरादपीयम् ।
अलिनो नलिनोदराद्विमुक्ताः प्रियबाहुद्वयबन्धनान्नवोढा ॥

(पाठोऽसमीचीनः) —*कस्यापि*

अथ प्रभातवायुः

516. विकचकमलगन्धैरन्धयन् भृङ्गमालां
सुरभितमकरन्दं मन्दमावाति वायुः ।
समदमदनमाद्यद्यौवनोद्दामरामा-
रमणरभसखेदस्वेदविच्छेददक्षः ॥

—माघकवेः

517. स्तनपरिसरभागे दूरमावर्तमानाः
स्फुटवलिवलिमध्ये किञ्चदेव स्खलन्तः ।
ववुरलघुनितम्बाभोगरुद्धा वधूनां
निधुवनरसखेदच्छेदिनः शीतवाताः ॥

—कस्यापि

अथ सूर्योदयः

518. एकद्वित्रिचतुष्क्रमेण गणनामेषामिवास्तंगतां
कुर्वाणा समकोचयद्दृशशतान्यम्भोजसम्वर्तिकाः ।
भूयोऽपि क्रमशः प्रसारयति ताः सम्प्रत्यमूनुद्यता
संख्यातुं सकुतूहलेव नलिनी भानोः सहस्रं करान् ॥

—मुरारेः

519. भुवि गतमतिदूरं दीर्घकाण्डाग्रचक्रा-
कृतिविततदलानां क्ष्मासहच्छायवृन्दम् ।
अवहतनवशूरव्याहतध्वान्तसेना-
ततिपतितविदण्डच्छत्रषण्डानुकारम् ॥

520. निचितरुचितरङ्गच्छद्मकश्मीरनीर-
च्छुरणगुणपिशङ्गाभोगभङ्गं वहन्त्याः ।
तदनु कमलिनीनां कामुकः काञ्चनीयं
तिलकमिव विरेजे व्योम लक्ष्मीमृगाक्ष्याः ॥

—अमरचन्द्रस्यैते

अथ ग्रीष्ममध्याह्नवर्णनम्

521. मध्याह्ने हरितो हुताशनमुचः कामोऽपि वामभ्रुवां
पाटीरद्रवशीतलस्तनतटीमाच्छाद्य निद्रायते ।
एणाः केसरिणोऽपि केसरसटोपान्ते सुखं शेरते
छायामङ्कगतां न मुञ्चति तरुर्वोढा नवोढामिव ।।

—*कस्यापि*

522. मध्याह्ने जलजातवृन्तमनिलः सर्वात्मना सेवते
वारिस्वेदमिषेण पङ्कजदृशां वक्षोजमालम्बते ।
निद्रा नेत्रमुपैति पक्ष्मवहलच्छायाश्रयादेव किं ?
पान्थानामथ पादयोर्निपतति च्छायाऽपि मा यात्विति ।।

—*कस्यापि*

523. मध्याह्ने जलजातवृन्तमनिलः सर्वात्मना सेवते
नद्यो बुद्बुदमुद्वमन्ति परितो भावाननूनत्विषि ।
निद्रावश्यमशेषमेव भुवनं शातोदरीणां पुनः
क्रीडाकुञ्जकुटीरकेषु वलय-क्वाणो न निद्रायते ।।

—*कस्यापि*

524. अस्वाध्यायः पिकानां मदनमखसमारम्भणस्याधिमासो
निद्राया जन्मलग्नं किमपि मधुलिहां कोऽपि दुर्भिक्षकालः ।
विष्टिर्यात्रोत्सुकानां मलयजमरुतां पान्थकान्ताकृतान्तः
प्रालेयोन्मूलमूलं समजनि समयः कश्चिदौत्पातिकोऽयम् ।।

—*वाहिनीपतेः*

225. निजकायच्छायायां विश्रम्य निदाघविपदमपनेतुम् ।
बत विविधास्तनुभङ्गीर्मुग्धकुरङ्गीयमाचरति ।।

—*गोवर्धनस्य*

526. अथ संसार - संहारवासना - बन्धवासितः ।
अजायत वृषारूढो भैरवो महसां निधिः ॥

—*भानुकरस्य*

527. निदाघकाले किल चण्डरश्मि-
प्रचण्डरश्मिप्रकरावलीढम् ।
स्यादेव दग्धं जगदेव न स्याद्
यदि स्रवः स्वेदजलावलीनाम् ॥

—*लक्ष्मणस्य*

528. तदैव स्नातानां दरदलितमल्लीमुकुलिताः
स्रजो बिभ्राणानां मलयजरसार्द्रार्द्रवपुषाम् ।
निदाघाग्नि-श्लेष-ग्लपितमभिसार्यं मृगदृशां
परिष्वङ्गोऽनङ्गं पुनरपि शनैरङ्कुरयति ॥

—*कस्यापि*

529. सर्पत्सारिणि वारिशीतलतले विन्यस्तपुष्पोत्करे
नीरन्ध्रे कदलीदलैर्गुरुदलच्छायाहतार्कत्विषि ।
कर्पूरागुरुपङ्कपिच्छिलघनोत्तुङ्गस्तनालिङ्गिभिः
कान्ताकेलिरतैरहो ! सुकृतिभिर्मध्यं दिनं सेव्यते ॥

—*कस्यापि*

अथ प्रपापालिका

530. अङ्गुल्यग्रनिरोधतस्तनुतरां धारामियं कुर्वती
कर्कर्या नितरां पयो निपुणिका दातुं प्रपापालिका ।
विश्लिष्टाङ्गुलिना करेण दशनापीडं शनैः पान्थ हे !
निःस्पन्दोर्ध्वविलोचनस्त्वमपि हा ! जानासि पातुं रसम् ॥

—*कस्यापि*

531. दूरादेव कृताञ्जलिर्न तु पयःपानाय पानोचितो
रूपालोकनकौतुकात् प्रचलितो मूर्धा न शान्त्या तृषः ।
रोमाञ्चोऽपि निरन्तरं प्रकटितः प्रीत्या न शैत्यादपा-
मक्षुण्णो विधिरध्वगेन विहितो वीक्ष्य प्रपापालिकाम् ॥

—बाणभट्टस्य

532. अवधिदिनावधिजीवाः प्रसीद जीवन्तु पथिकजनजायाः ।
दुर्लङ्घ्यवर्त्मशैलौ स्तनौ पिधेहि प्रपापालि ! ॥

—गोवर्धनस्य

533. आध्मातोद्धतदाववह्निसुहृदः कीर्णोष्मरेणूत्कराः
सन्तप्ताध्वगमुक्तखेदविषमश्वासोष्मसंवादिनः ।
तृष्णार्ताजगरायतास्यकुहरक्षिप्रप्रवेशोत्कटा
भ्रूभङ्गैरिव तर्जयन्ति पवना दग्धस्थलीं कज्जलैः ॥

—क्षेमेन्द्रस्य

अथ जलकेलिः

534. समापतत्तुङ्गतरङ्गताद्रुतप्रतिच्छदच्छेदमिषेण योषिताम् ।
कृतस्थितीनां तटिनीतटे स्यात् समुत्थितिं चक्रुरिवाम्बुदेवताः ॥

535. अमुत्र मा भैष्ट पुरोऽपि सुभ्रुवः
सृजन्ति केलिं कुहरीषु पश्यत ।
इति प्रतार्य प्रतिविम्बदर्शना-
दवीविशत् कामिजनोऽङ्गना जलम् ॥

—बालभारतस्यैतौ

536. करौ धुनाना नवपल्लवाकृती
पयस्यगाधे किल जातसम्भ्रमा ।
सखीषु निर्वाच्यमधार्ष्टचदूषितं
प्रियाङ्गसंश्लेषमवाप मानिनी ॥

—*भारवेः*

537. क्रीडासु पाणिप्रसरेण मुञ्चतः सदम्भमम्भांसि निषेद्धुमक्षमा ।
काचित् प्रियस्योरसि वक्त्रपङ्कजं ररक्ष दक्षा विनयोपरागिणी ॥

—*बालभारतस्य*

538. आत्तमात्रमधिकान्तमुक्षितुं कातरा शफरशङ्किनी जहौ ।
अञ्जलौ जलजधीरलोचना लोचनप्रतिशरीरलाञ्छितम् ॥

—*कलशस्य*

539. मिथः समालोकनभिन्नचेतसो रसात् प्रियावल्लभयोः कयोश्चन ।
अव्यापृतं तज्जलमञ्जलौ धृतं रुरोद निःष्यन्दिभिरेव बिन्दुभिः ॥

—*बालभारतस्य*

540. ललितमुरसा तरन्ती तरलतरङ्गौघचालितनितम्बाः ।
विपरीतरतासक्तेव दृश्यते सरसि सा सख्या ॥

—*अमरुकस्य*

541. अविरतमदमम्भः स्वेच्छयोत्तालयन्त्या
विकचकमलकान्तोत्तानहस्तद्वयेन ।
परिकलित इवार्घ्यः कामबाणातिथिभ्यः
सलिलमिव वितीर्णं बाललीलासुखाय ॥

—*कस्यापि*

542. रोमाञ्चदण्डान्तरगैर्मृगीदृशां
नखक्षतैः स्नानपरिस्फुटीकृतैः ।
तीव्रार्धचन्द्रायुधमञ्जुलैर्जग-
ज्जयाय दर्पं विततान दर्पकः ॥

543. कनीनिकाकान्तिभिरञ्जनं दृशोः
स्मितत्विषा चन्दनचर्च्चनं हृदः ।
कटाक्षभाभिर्नवमुत्पलं श्रुते-
स्तदा वधूनामिति भूषणान्यभान् ॥

—बालभारतस्यैतौ

544. उन्मृष्टपत्राः कलितालकान्ताः
कण्ठेषु लग्ना जघनं स्पृशन्तः ।
स्तनस्थलेष्वाहतिमादधाना
गता वधूनां प्रियतां जलौघाः ॥

—जयमाधवस्य

545. जलनिविडितवस्त्रव्यक्तनिम्नोन्नताभिः
समलसि तटभूमिः स्नानमात्रोत्थिताभिः ।
रुचिरकनककुम्भश्रीमदाभोगतुङ्ग-
स्तनविनिहितहस्तस्वस्तिकाभिर्वधूभिः ॥

—भवभूतेः

546. सुभगसलिलावगाहाः पाटलसंसर्गसुरभिवनवाताः ।
प्रच्छायसुलभनिद्रा दिवसाः परिणामरमणीयाः ॥

—कालिदासस्य



॥ अथ वर्षावर्णनम् ॥

अथ घनागमः

547. कामेन कामं प्रहिता जवेन
प्रावृट् चचाल त्रिजगद्विजेतुम् ।
किं चन्द्रबिम्बं दधि भक्षयन्ती
सन्धारयन्ती हरितः शुभाय ॥

—*लक्ष्मणस्य*

548. प्रमदयति कस्य न मनश्चपलैर्घनधूलिधूसरच्छायैः ।
आक्रम्य पुत्रकैरिव मलिनीकृतमम्बरं जलदैः ॥

—*कस्यापि*

अथ इन्द्रगोप

549. स्फुरन्तः पिङ्गलाभासो धरण्यामिन्द्रगोपकाः ।
सरक्तवान्ताः पान्थस्त्रीजीवा इव चकाशिरे ॥

—*कस्यापि*

अथ शिलीन्ध्राः

550. आकर्ण्य स्मरयौवराज्यपटहं जीमूतधीरध्वनिं
नृत्यत्केकिकुटुम्बकस्य दधतं मन्दाङ्गनृत्यक्रियाम् ।
उन्मीलन्नवनीलकन्दलदलव्याजेन रोमाञ्चिताः
हर्षेणेव समुत्थितान् वसुमती दध्रे शिलीन्ध्रध्वजान् ॥

—*त्रिविक्रमस्य*

अथ विद्युत्

551. याचितेन बहु चातकद्विजैरम्बुदेन जलदानपूर्वकम् ।
हेमयष्टिरिव दूरमीरिता सञ्चचार रुचिराऽचिरप्रभा ॥

—*कविराजस्य*

552. क्षपां क्षामीकृत्य प्रसभमपहृत्याम्बु सरितां
प्रताप्योर्वीं कृत्स्नां तरुगहनमुच्छोष्य सकलम् ।
क्व सम्प्रत्युष्णांशुर्गत इति तदन्वेषणपरा-
स्तडिद्दीपालोका दिशि दिशि चरन्तीव जलदाः ॥

—पाणिनेः

अथ खद्योतः

553. खद्योत-पोत-प्रकराः समं खे द्योतन्त एते द्युतिभिः प्रचण्डाः ।
पयोद-संघट्टविघट्टितस्य किं वैद्युतस्य ज्वलनस्य खण्डाः ॥

—लक्ष्मणस्य

554. पाथोद-कीर-पटलेन विदारितस्य
मार्तण्डमण्डलपचेलिमदाडिमस्य ।
व्योमाङ्गने निपतिता इव बीजपूराः
खद्योतपोतसुषमां सुखमावहन्ति ॥

—भानुकरस्य

अथ घनचापम्

555. अस्थिरमनेकरागं गुणरहितं नित्य-दुष्प्रापम् ।
प्रावृषि सुरेन्द्रचापं विभाव्यते युवतिचित्तमिव ॥

—शकवृद्धेः

अथ घनगर्जितम्

556. या कामिनी सा यदि मानिनी स्यात्
स्मरस्य राज्ञो ह्यपराधिनी स्यात् ।
तत्ताड्यते किं ध्वनिपूर्णदिक्का
कादम्बिनी कामनृपस्य ढक्का ॥

557. चन्द्रबिम्ब-रविविम्ब-तारकामङ्गलानि घनमेघडम्बरैः।
भक्षितानि जलदोदरेषु तत् क्रन्दनध्वनिरिवैष गर्जितम् ॥

—लक्ष्मणस्यैतौ

अथ आसारः

558. दिशां हाहाकाराः शमितशमभारा अपि मुने-
रसूचीसञ्चाराः कृतमदविकाराश्च शिखिनाम्।
हृताध्वव्यापारास्तुहिनकणसारा विरहिणी-
मनःकीर्णाङ्गाराः किरति जलधारा जलधरः॥

559. मन्दं मुद्रितपांसवः परिपतज्झांकारिझञ्झामरुद्-
वेगध्वस्तकुटीरकाग्रनिपतच्छिद्रेषु लब्धान्तराः।
कर्मव्यग्रकुटुम्बिनीकुचभरस्वेदच्छिदः प्रावृषः
प्रारम्भे मदयन्ति कन्दलदलोल्लासाः पयोबिन्दवः॥

—अमरुकस्यस्यैतौ

अथ घनदुर्दिनम्

560. घनतरघनवृन्दच्छादिते व्योम्नि लोके
सवितुरथ सुधांशोः संकथैव व्यरंसीत्।
रजनिदिवसभेदं मन्दवाताः शशंसुः
कुमुदकमलगन्धानाहरन्तः क्रमेण॥

—रघुपतेः

561. विरहमनुभवन्ती सङ्गमञ्चापि भर्त्रा।
रजनिदिवसभेदं चक्रवाकी शशंस॥

(उपरितनस्यैव श्लोकस्य उत्तरार्द्धस्य अम्बष्ठेन पूर्तिः)

562. आसारेण न हर्म्यतः प्रियजनैर्गन्तुं वहिः शक्यते
शीतोत्कम्पनिमित्तमायतदृशा गाढं समालिङ्ग्यते ।
जालैः शीकरशीतलाश्च मरुतो रत्यन्तखेदच्छिदो
धन्यानां वत दुर्दिनं सुदिनतां याति प्रियासङ्गमे ॥

—कस्यापि

अथ वर्षासंयोगी

563. मेघाटोपैः स्तनितसुभगं वीक्ष्य खं, हस्तिदन्तैः
कृत्वा भित्तेरुपरि सदनं, चामरैश्छादयित्वा ।
कर्पूरैस्तां मृगमदरसैर्भूमिमालिप्य शेते
सैंहे चर्मण्युरसि दयिताबाहुगूढः पुलिन्दः ॥

—कस्यापि

564. रटतु जलधरः पतन्तु धाराः
स्फुरतु तडिन्मरुतोऽपि वान्तु शीताः ।
इयमुरसि महौषधीव कान्ता
निखिलभयप्रतिघातिनी स्थिता मे ॥

—कस्यापि

वर्षाविरही

565. उन्निद्रकन्दलदलान्तरलीयमान-
गुञ्जन्मदान्धमधुपे घनमेघकाले ।
स्वप्नेऽपि यः प्रवसति प्रविहाय कान्तां
तस्मै विषाणरहिताय नमो वृषाय ॥

—राहुकस्य

566. गर्ज वा वर्ष वा मेघ ! मुञ्च वाऽशनिमम्बरात् ।
गणयन्ति न शीतोष्णं वल्लभाभिमुखाः स्त्रियः ॥

—कस्यापि (शूद्रकस्य)

567. प्रत्यङ्गनं प्रतिदिशं कणमेकमेकं
चिन्वन्ति चञ्चुपुटकेन विहङ्गमास्ते ।
वर्षासु नैव परियान्ति हि तेऽपि नीडाद्
धिक् पण्डितान् प्रवसतो जलदागमेऽपि ।।

—*कस्यापि*

वर्षाविरहिणी

568. पतत्यविरतं वारि नृत्यन्ति शिखिनो मुदा ।
अद्य कान्तः कृतान्तो वा दुःखस्यान्तं विधास्यति ।।

—*बलिमिश्रस्य*

569. मलयमरुतां व्राता याता विकाशितमल्लिकाः
ससुरभिभरो ग्रीष्मो भग्नस्त्वमुत्सहसे यदि ।
घन घटयितुं तं निःस्नेहं य एव निवर्त्तने
प्रभवति गवां, किं नश्छिन्नं, स एव धनञ्जयः ।।

—*अमरुकस्य*

570. उच्चैर्विरौति हि मयूरकुलं यदम्ब !
मन्दं प्रवाति मकरन्दकरम्बितश्च ।
वातः प्रवासि-पतिरेति न, तेन मन्ये
निर्घ्राणनिर्घृणविकर्णविहृत्त्वमस्य ।।

—*भानुकरस्य*

571. मेघैर्धाम नवाम्बुभिर्वसुमती विद्युल्लताभिर्दिशो
धाराभिर्गगनं वनानि कुटजैः पूरैर्वृता निम्नगाः ।
एकां घातयितुं वियोगविकलां दीनां वराकीं स्त्रियं
प्रावृट्काल ! हताश वर्णय कृतं मिथ्या किमाडम्बरम् ।।

—*बीजकस्य*

572. वाता वान्तु कदम्बरेणुशबला, नृत्यन्तु सर्पद्विषः
सोत्साहा नववारिभारगुरवो मुञ्चन्तु नादं घनाः ।
मग्नां कान्तवियोगशोकजलधौ मां वीक्ष्य दीनाननां
विद्युत् किं स्फुरसि त्वमप्यकरुणे स्त्रीत्वे समाने सति ।।

मानसं प्रति हंसगमनम्

573. तटमुपगतं पद्मे पद्मे निवेशितमाननं
प्रतिपुटकिनीपत्रच्छायं मुहुर्मुहुरासितम् ।
मुहुरुपगतैरस्त्रैः कोष्णीकृता जलवीचयो
जलदमलिनां हंसेनाशां विलोक्य यियासता ।।

—कस्यापि

अथ दोला

574. अभ्यस्तनित्यपुरुषायितलाघवानि
श्रोणिस्तनोन्नतिनतान्यथ दर्शयन्ति ।।

(पूर्वार्द्धं विनष्टम्)

575. दोलाधिरोहपरया परया प्रियस्य
पृष्ठे न्यधीयत पदं यदलक्तकाङ्कम् ।
पश्चाङ्गुलीपरिचितेन स तेन रङ्ग-
रङ्गन्निषङ्ग इव पञ्चशरो विरेजे ।।

—बालभारतस्यैतौ

576. प्रत्यासन्नमुखी सखीभुजयुगप्रेङ्खोलितां प्रेङ्खिका-
मारुह्येयमुदस्तहारललितव्यावृत्ततुङ्गस्तनी ।
दृष्टादृष्टसखीगतागतवशादालोलमानांशुका
तन्वङ्गी गगने करोति पुरतः शातह्रदं विभ्रमम् ।।

—नाथकुमारस्य

577. प्रसार्य पादौ विहितस्थितीनां
दोलासु लोलांशुकपल्लवानाम् ।
मनोरथानामपि यन्न गम्यं
तद्द्रष्टुमापुः सुदृशां युवानः ॥

—*विल्हणस्य*

578. दोलास्पृशां मृगदृशां वदनानि रेजु-
र्दण्डावलम्ब - तत - बाहु - युगान्तराले ।
सद्यो मृणालजनितेषु शरासनेषु
वाणीकृतानि नलिनानि मनोभुवेव ॥

579. प्रेङ्खोलनेऽम्बरगतेऽप्यतिधाष्ट्र्यमुक्त-
यष्टिग्रहाद्भुतविनिर्मितहस्तताला ।
अत्रासयन्मृदुलगीतिभिरापतन्तं
काचिद्विधोर्मृगमिवास्यकलङ्कभीत्या ॥

580. दोलागतेन गगनाग्रमवाप्य शोणं
कस्याश्चन स्तनयुगं विनमद्विलोक्य ।
भानुर्न्यधत्त नयनं निजपाणियुग्मे
लीलासरोजयुगली - गलनभ्रमेण ॥

581. दोलागतागतविनोदरसेन गानं
प्रापञ्चयन्त सुदृशः श्रितपञ्चमं यत् ।
तस्य प्रतिध्वनिरिवोपवनाश्रयाणा-
मश्रावि कण्ठकुहरेषु कुहूकरीणाम् ॥

—*अमरचन्द्रस्यैते*

582. दृशा विदधिरे दिशः कमलराजि-नीराजिताः
कृता हसितरोचिषा वियति चन्द्रिकावृष्टयः ।
अकारि हरिणीदृशः प्रवलदण्डकप्रस्फुर-
द्वपुर्विपुलरोचिषा वियति विद्युतां विभ्रमः ॥

—*गणपतेः*

583. दोलायमानाः प्रियनुद्यमानहिन्दोलया बालचमूरुनेत्राः ।
प्रसारिदेहद्युतिवारिपूरे वितेनिरे किं प्लवनानि भूयः ॥

—गदाधरस्य

584. प्रागुत्तीर्णप्रियतमभुजाडम्बरालम्बलोला
दोलासौख्यं क्षणमकलयन्नुत्तरन्त्योऽपि नार्यः ।
सद्योऽभ्यासप्रबलमबलाचक्रवाले समन्ता-
दप्युत्तीर्णे न चिरममुचल्लोलभावञ्च दोलाः ॥

—बालभारतस्य

अथ शरदृतुः

585. स्वच्छाम्बरच्छादितसर्वगात्रा
राजीवनेत्रा लसदिन्दुवक्त्रा ।
क्वणन्मरालावलिनूपुराढ्या
ययौ मदाढ्येव शरन्नताङ्गी ॥

—लक्ष्मणस्य

586. पयोदजालजम्बालजटिलं शरदङ्गना ।
अम्बरं धावयामास चन्द्रिकाचयवारिभिः ॥

587. अहो ! बाणस्य सन्धानं शरदि स्मरभूपतेः ।
अपि सोऽयं त्विषामीशः कन्याराशिमुपागतः ॥

—भानुकरस्य

588. कलमाः पाकविनम्रा मूलतलाघ्रातसुरभिकह्लाराः ।
पवनाकम्पितशिरसः प्रायः कुर्वन्ति परिमलश्लाघाम् ॥

—भोजप्रबन्धस्य

589. अर्धं सुप्त्वा निशायाः सरभससुरतायाससन्नश्लथाङ्गः
प्रोद्भूतासह्यतृष्णो मधुमदविरतौ हर्म्यपृष्ठे प्रबुद्धः ।
सम्भोगक्लान्तकान्ताशिथिलभुजलतावर्जितं गर्गरीतो
ज्योत्स्नाभिन्नाच्छधारं न पिबति सलिलं शारदं, मन्दपुण्यः ॥

—*भर्तृहरेः*

अथ वायुः

590. वान्ति रात्रौ रतक्लान्तकामिनीसुहृदोऽनिलाः ।
ललनालोलधम्मिल्लमल्लिकामोदवासिताः ॥

—*कस्यापि*

591. वान्ति कह्लारसुभगाः सप्तच्छदसुगन्धयः ।
वाता नवरतग्लानवधूगमनमन्थराः ॥

—*वाल्मीकेः*

592. चेतः कर्षन्ति सप्तच्छदकुसुमरसासारसौरभ्यलुभ्यद्-
भृङ्गी संगीतशृङ्गिश्रुतिसुभगदिशो वासराः शारदीनाः ।
किञ्च व्याकोशपङ्केरुहमधुरमुखीं सञ्चरच्चञ्चरीक-
श्रेणीवेणीसनाथां रमयति तरुणः पद्मिनीमंशुमाली ॥

—*श्रुतधरस्य*

अथ शारदपथिकः

593. पान्थानुषङ्गं पथि विस्मरन्तः कथावशेषेषु च पयोदवृन्दे ।
मार्गेषु चन्द्रातप-पिच्छिलेषु पदे-पदे चस्खलुरध्वनीनाः ॥

—*अभिनन्दनस्य*

अथ हेमन्तः

594. हिमधवलदन्तकेशा, मन्दद्युतितारका बृहत्तिमिरा ।
द्विगुणीभूता रजनी वृद्धेव शनैः शनैर्याति ॥

—*वीजकस्य*

595. हेमन्तहिमनिस्पन्दमवलोक्य मनोभवम् ।
प्रहर्तुं सुभ्रुवां चेतो रविर्देवो धनुर्दधौ ॥

596. अभ्युल्लसन्ति विनिवारितचन्दनाना-
मेणीदृशां वपुषि कुङ्कुमपत्रलेखाः ।
अभ्यागताः करसरोजपदारविन्द-
संरक्षणाय किरणा इव तिग्मभानोः ॥

597. अम्बरमेष रमण्यै यामिन्यै वासरः प्रेयान् ।
अधिकं ददौ निजाङ्गादथ संकुचितः स्वयं तस्थौ ॥

—भानुकरस्यैते

598. लज्जाः प्रौढमृगीदृशामिव नवस्त्रीणां रतेच्छा इव
स्वैरिण्या नियमा इव स्मितरुचः कौलाङ्गनानामिव ।
दम्पत्योः कलहा इव प्रणयिनो वारांगनानामिव
प्रादुर्भूय तिरोभवन्ति सहसा हैमन्तिका वासराः ॥

—कविकङ्कणस्य

599. प्रोद्यत्प्रौढारविन्दद्युतिभृति विदलत्कुन्दमाद्यद्द्विरेफे
काले प्रालेयवातप्रचलविकसितोदारमन्दारदाम्नि ।
येषां नो कण्ठलग्ना क्षणमपि तुहिनक्षोददक्षा मृगाक्षी
तेषामायामियामा यमसदनसमा यामिनी याति यूनाम् ॥

—कस्यापि

600. प्रालेयशैलशिशिरानिलसंप्रयोग-
प्रोत्फुल्लकुन्दमकरन्दहृतालिवृन्दः ।
कालोऽयमापतति कुङ्कुमपङ्कपिङ्ग-
प्रोत्तुङ्गरम्यरमणीकुचसङ्गयोग्यः ॥

—भोहृरस्य

अथ हेमन्तपथिकः

601. हे पान्थ ! प्रियविप्रयोगहुतभुग्ज्वालानभिज्ञोऽसि किं,
किं वा नास्ति तव प्रिया, गतघृणः किं वा विहीनो धिया ।
येनास्मिन्नवकुङ्कुमारुणकुचव्यासङ्गधर्मोचिते
कुन्दानन्दितमत्तषट्पदकुले काले गृहान्निर्गतः ॥

—*कस्यापि*

अथ हसन्ती

602. कविगीरिव वहुलोहा सुमिलितचक्रा प्रभातवेलेव ।
हरमूर्तिरिव हसन्ती विभाति विधूमानलोपेता ॥

603. हसन्तीं च हसन्तीं च हसन्तीं वामलोचनाम् ।
हेमन्ते ये न सेवन्ते ते नरा दैववञ्चिताः ॥

—*कयोरपि*

अथ वायुः

604. ददात्यधरचुम्बनं नयनपङ्कजं मुद्रय-
त्यमन्दपुलकं मनागमलमङ्गमालिङ्गति ।
विचालयति चालकं चपललोचनाया हठात्
तनोत्यविनयं मरुत् प्रिय इवैष हैमन्तिकः ॥

605. मरुतो हन्त ! हेमन्तनिशि शीतज्वरातुराः ।
जीवन्ति हरिणाक्षीणां वक्षोजाश्लेषरक्षिताः ॥

—*लक्ष्मणस्य*

अथ शिशिरः

606. आचुम्ब्य विम्बाधरमङ्गवल्ली-
मालिङ्ग्य संस्पृश्य कपोलपालिम् ।
श्रीखण्डमादाय करेण कान्तः
सन्त्रासयामास सरोरुहाक्षीम् ॥

—*भानुकरस्य*

607. वह्नेः शक्तिर्जलमिव गता दर्शनाद्दाहवृत्ते-
र्नित्योद्गन्धे नवमरुचके वर्तते पुष्पकार्यम् ।
शीतत्रासं दधदिव रविर्याति सिन्धोः कृशानुं
नीहारार्ता इव च दिवसाः साम्प्रतं संकुचन्ति ।।

—*राजशेखरस्य*

608. पीनोत्तुङ्गपयोधराः परिलसत्सम्पूर्णचन्द्रानना:
कान्ता नैव गृहे गृहं न च दृढं जाड्यम् च काश्मीरजम् ।
ताम्बूलं न च तूलिका न च पटी तैलं न गन्धाविलं
सद्यःपाचितसार्द्रका न वटकाः शीतं कथं गम्पते ।।

—*श्वेताम्बरश्रीचन्द्रस्य*

609. द्वारं गृहस्य पिहितं शयनस्य पार्श्वे
वह्निर्ज्वलत्युपरि तूलपटो गरीयान् ।
अङ्गानुकूलमनुरागवशं कलत्र-
मित्थं करोति किमसौ स्वपतस्तुषारः ।।

—*कस्यापि*

अथ वायुः

610. केशानाकुलयन् दृशौ मुकुलयन् वासो बलादाक्षिप-
न्नातन्वन् पुलकोद्गमं प्रकटयन्नावेगकम्पं गतेः ।
वारं वारमुदारसीत्कृतभरैर्दन्तच्छदं पीडयन्
प्रायः शैशिर एष सम्प्रति मरुत् कान्तासु कान्तायते ।।

—*कस्यापि*

611. चुम्बन्तो गल्लभित्तीरलकवति मुखे सीत्कृतान्यादधाना
वक्षःसूत्कञ्चुकेषु स्तनभरपुलकोद्भेदमापादयन्तः ।
ऊरूनाकम्पयन्तः पृथुजघनतटात्स्रंसयन्तोंऽशुकानि
व्यक्तं कान्ताजनानां विटचरितभृतः शैशिरा वान्ति वाताः ।।

—*कस्यापि*

अथ शिशिरपथिकः

612. पुण्याग्नौ पूर्णवाञ्छः प्रथममगणितप्लोषदोषः प्रदोषे
पान्थः सुप्त्वा यथेच्छं तदनु तनुतृणे धामनि ग्रामदेव्याः।
उत्कम्पी कर्पटार्धे जरति परिजडे छिद्रिणि छिन्ननिद्रो
वाते वाति प्रकामं हिमकणिनि कणन् कोणतः कोणमेति ॥

अथ वसन्तः

613. कामस्य जेतुकामस्य मिलनाय महीपतेः।
देवो मीनं त्विषा भीतो द्वारीकर्तुमिवाययौ ॥

—भानुकरस्य

614. स्थलकमलतरूणां कामिनीलोचनेषु
क्षिपति मुकुलमुष्ट्या धूलिजालं विशालम्।
तदनु हरति हन्त स्वान्तसर्वस्वमासा-
मयमनयविदग्धो धूर्त्तवन्मीनकेतुः ॥

—गणपतेः

615. अनुभूतचरेषु दीर्घिकाभामुपकण्टेषु गतागतैकतानाः।
मधुपाः कथयन्ति पद्मिनीनां सलिलैरन्तरितानि कोरकाणि ॥

—कस्यापि

अथ पुष्पावचयः

616. उच्चित्य प्रथममधःस्थितं मृगाक्षी
पुष्पौघं श्रितविटं ग्रहीतुकामा।
आरोढुं चरणमदादशोकपृष्ठे
मूलाग्रात् पुनरपि तेन पुष्पितोऽसौ ॥

—जयमाधवस्य

617. सर्वं द्विरेफपरिभूतिभयाद् भवत्या
यत् केशपुष्पभरणं हरिणाक्षि मुक्तम् ।
व्यर्थं तदद्य पुनरप्यलकेषु भृङ्गाः
पुञ्जीभवन्निजकुलभ्रमतः पतन्ति ॥

—कस्यापि

618. सन्तु द्रुमाः किसलयोत्तरपुष्पभाराः
प्राप्ते वसन्तसमये कथमित्थमेव ।
न्यासैर्नवद्युतिमतोः पदयोस्तवेयं
भूः पुष्पिता सुतनु पल्लविता च भाति ॥

—सूक्तिसहस्रात्

अथ वसन्तपथिकः

619. सव्याधेः कृशता क्षतस्य रुधिरं दष्टस्य लालाच्युतिः
किञ्चिन्नैतदिहास्ति तत् कथमसौ पान्थस्तपस्वी मृतः ।
आं ज्ञातं मधुलम्पटैर्मधुकरैरारब्धकोलाहलै-
र्नूनं साहसिकेन चूतमुकुले दृष्टिः समारोपिता ॥

—रामिलसोमिलयोः

620. अध्वन्यस्य वधूर्वियोगविधुरा भर्तुः स्मरन्ती यदि
प्राणानुज्झति कस्य तत् खलु महत् सञ्जायते पातकम् ।
यावन्नो कृतमध्वगेन हृदये तावत्तरोर्मूधनि
प्रोद्घुष्टं परपुष्टया तवतवेत्युच्चैर्वचो नैकशः ॥

—कस्यापि

621. वसन्तप्रारम्भे चिरविरहखिन्ना सहचरी
यदि प्राणान्मुञ्चेत्तदिह वधपापी भवति कः ।
वयो वा स्नेहो वा विषमविशिखो वेति विमृशं-
स्तुहीति प्रव्यक्तं पिकनिकरझङ्कारमशृणोत् ॥

—कस्यापि

622. मन्दोऽयं मलयानिलः किसलयं चूतद्रुमाणां नवं
माद्यत्कोकिलकूजितं विचकिलामोदः पुराणं मधु ।
बाणानित्युपधीकरोति सुरभिः पञ्चैव पञ्चेषवे
यूनामिन्द्रियपञ्चकस्य युगपत् सम्मोहसम्पादिनः ।।

अथ वायुः

623. मलयाचलानिलोऽयं मन्दगतिर्जालमार्गतः प्रविशन् ।
सुरतान्तसुप्तसुदृशां चोरयति स्वेदमौक्तिकाभरणम् ।।

।। इति श्रीमद्गोविन्दजित्-संगृहीते सभ्यालङ्करणे सम्भोगशृङ्गारे
षड्ऋतुवर्णनं नाम सप्तमो मरीचिः ।।

●

८

।। अष्टमो मरीचिः ।।

●

अथ नायकस्य विप्रलम्भश्रृङ्गारः

624. विप्रलम्भाभिधानो यः श्रृङ्गारः स्याच्चतुर्विधः ।
पूर्वानुरागो मानश्च प्रयासः करुणात्मकः ।।

625. दम्पत्योर्दर्शनादेव प्रवृत्तगुरुरागयोः ।
दशाविशेषो योऽप्राप्तौ पूर्वरागः स उच्यते ।।

626. वामता दुर्लभत्वञ्च स्त्रीणां याचनवारणा ।
तदेव पञ्चवाणस्य मन्ये परममायुधम् ।।

627. नद्या इव प्रवाहो विषमशिलासंकटस्खलितः ।
विघ्नितसमागमसुखो मनसिशयः शतशिखरीभवति ।।

628. वृत्तिषु चक्रीयति युवा पञ्जरशकुनीयति प्रमदा ।
एतत् प्रेम, तदन्यत् प्रभवति यूनोः कलङ्काय ।।

अथाभिलाषः

629. सम्भूयेव सुखानि चेतसि परं भूमानमातन्वते
यत्रालोकपथावतारिणि रतिं प्रस्तौति नेत्रोत्सवः ।
यद्बालेन्दुकलोच्चयादुपचितैः सारैरिवोत्पादितं
तत् पश्येयमनङ्गमङ्गलगृहं भूयोऽपि तस्या मुखम् ।।

॥ अथ पूर्वानुरागे साक्षाद्दर्शनम् ॥

तत्र मार्गे दर्शनम्

630. सलीलमियमायाति कामिनी गजगामिनी ।
उन्नताङ्घ्रिनखज्योतिः पुष्पैर्भुवमिवार्च्चति ॥

631. अकृशं नितम्बबिम्वे क्षामं मध्ये समुन्नतं कुचयोः ।
अत्यायतं नयनयोर्मम जीवितमेतदायाति ॥

—कालिदासस्य

632. कुचकलशस्खलदम्बरसम्वरणव्यग्रपाणिकमलायाः ।
निपतन्ति भाग्यभाजामुपरि कटाक्षाः कुरङ्गाक्ष्याः ॥

—कस्यापि

मार्गे परस्परसम्भाषणम्

633. विरचय न वामशीले, चेलाञ्चलमन्तरा मुहुः कृपया ।
प्रत्युद्विध्यत्येवं लोचनविशिखो विशेषेण ॥

634. अभिमुखमुपायान्त्यां मार्गे मृगीदृशि मे दृशा-
वहह सदृशोद्दीर्णानन्दं नितान्तमसह्यताम् ।
विषमितपदन्यासं याते मयाऽथ निरीक्ष्यतां
पुर इति वचौ जीयात्तस्याः स्मितेन सनाथितम् ॥

635. हत्वा लोचनविशिखैर्गत्वा कतिचित् पदानि पद्माक्षी ।
जीवति युवा न वा किं, शिव शिव भूयो विलोकयति ॥

636. गच्छति पुरः शरीरं धावति पश्चादसंस्थितं चेतः ।
चीनांशुकमिव केतोः प्रतिवातं नीयमानस्य ॥

—कालिदासस्य

637. श्रमयति शरीरमधिकं भ्रमयति चेतः करोति सन्तापम् ।
मोहं मुहुश्च कुरुते विषमिव विषमेक्षणं तस्याः ॥

अथ पूर्वानुरागे स्वप्नदर्शनं नायकस्य

638. जाने स्वप्नविधौ ममाद्य चुलुकोत्सेक्यं पुरस्तादभूत्
प्रत्यूषे परिवेशमण्डलमिव ज्योत्स्नासपत्नं महः ।
तस्यान्तर्नखनिस्तुषीकृतशरच्चन्द्रप्रभैरङ्गकै-
र्दृष्टा काप्यबला बलात् कृतवती सा मन्मथं मन्मथम् ॥

639. स्वप्ने दृष्टा रहसि सुतनुर्गाढमालिङ्ग्यमाना
भूयो-भूयो विनमितमुखी चुम्ब्यमाना हठेन ।
यत् साकूतं विरचितवती चेष्टितं चञ्चलाक्षी
साक्षादेव स्फुरति तदहो हन्त निद्राक्षयेऽपि ॥

—*नीलकण्ठशुक्लानाम्*

640. क्व पातव्या ज्योत्स्नाऽमृतभवनगर्भापि तृषितै-
र्मृणालीतन्तुभ्यः सिचयरचना कुत्र भवतु ।
क्व वा पारीमेयोऽस्तु कुवलयदाम्नां परिमलः
कथं स्वप्नः साक्षात् कुवलयदृशं कल्पयति ताम् ॥

641. बाणान् संहर मुञ्च कार्मुकलतां लक्ष्यं तव त्र्यम्बकः
के नामात्र वयं शिरीषकलिकाकल्पं यदीयं मनः ।
तत् कारुण्यपरिग्रहात् कुरु दयामस्मिन् विधेये जने
स्वामिन् मन्मथ तादृशं पुनरपि स्वप्नाद्भुतं दर्शय ॥

642. तत् साधु साधु सरसीरुहलोचने यच्-
चेलाञ्चलेन कुचमण्डलमावृणोषि ।
श्यामाननस्य कठिनस्य वियोगिवक्षो-
विक्षोभिणो हि मुखमुद्रणमेव युक्तम् ॥

643. एतदेव मम पुण्यमगण्यं यत् कृशोदरि दृशोरतिथिस्त्वम् ।
दूरमस्तु मदघूर्णिततारं शारदेन्दुमुखि ! वीक्षणमक्ष्णोः ॥

644. आलिङ्गनाधरसुधारसपानवक्षो-
निष्पीडनादिविधिरस्तु विदूरतस्ते ।
यन्मां विलोकयसि चञ्चलदृष्टिपातै-
रेतावतैव हरिणाक्षि वयं कृतार्थाः ॥

645. ये ये खञ्जनमेकमेव कमले, पश्यन्ति दैवात् क्वचित्
ते सर्वे कवयो भवन्ति सुतरां प्रख्यातभूमीभुजः ।
त्वद्वक्त्राम्बुजनेत्रखञ्जनयुगं पश्यन्ति ये ये जना-
स्ते ते मन्मथबाणजालविकला मुग्धे ! किमत्यद्भुतम् ॥

646. एको हि खञ्जनवरो नलिनीदलस्थो-
दृष्टः करोति चतुरङ्गबलाधिपत्यम् ।
किं वा करिष्यति भवद्वदनारविन्दे
जानामि नो नयनखञ्जनयुग्ममेतत् ॥

647. केशाः संयमिनः श्रुतेरपि परं पारं गते लोचने
अन्तर्वक्त्रमपि स्वभावशुचिभिः कीर्णो द्विजानां गणैः ।
मुक्तानां सततं निवासरुचिरं वक्षोजकुम्भद्वयं
चेत्थं तन्वि वपुः प्रशान्तमपि ते रागं करोत्येव नः ॥

648. आसन्नमार्गमतिलङ्घ्य नतेन मूर्ध्ना
पश्चात् प्रसङ्गचलितेन मुखेन यान्त्या ।
आरोपिताः कतिपये मयि पङ्कजाक्ष्या
साकूतहासमनतिप्रकटाः कटाक्षाः ॥

649. यान्त्या मुहुर्वलितकन्धरमाननं तद्-
आवर्त्तवृन्तशतपत्रनिभं वहन्त्या ।
दिग्धोऽमृतेन च विषेण च पक्ष्मलाक्ष्या
गाढं निखात इव मे हृदये कटाक्षाः ॥

—भवभूतेः

अथ दर्पणदर्शनम्

650. पश्चान्मे गुरुसन्निधौ विधिवशादासेदुषी प्रेयसी
तत्सन्दर्शनलालसञ्च सुतरामासीन्मदीयं मनः ।
एतस्मिन् समये तदीयवदनच्छायासनाथीकृतः
कां प्रीतिं मम नाततान मुकुरो मत्पाणिशोभायितः ॥

—नीलकण्ठशुक्लानाम्

अथ मानाख्यो विप्रलम्भः

651. मानः कोपः स तु त्रेधा लघुर्मध्यो गुरुस्तथा ।
उत्स्वप्नायितभोगाङ्कगोत्रभेदादिसम्भवः ॥

लघुमानो यथा

652. शठान्यस्याः काञ्चीमणिरणितमाकर्ण्य सहसा
यदाश्लिष्यन्नेव प्रशिथिलभुजग्रन्थिरभवः ।
तदेतत् क्वाचक्षे घृतमधुमयत्वद्बहुवचो-
विषेणाघूर्णन्ती किमपि न सखी मे गणयति ॥

653. भर्त्सना भृकुटीबन्धो निग्रहः पाणिपीडनम् ।
ब्रह्मणीव जगत्तन्वि स्मिते सर्वं समाप्यते ॥

—नीलकण्ठशुक्लस्य

654. अलंकुरु निजं वपुर्दयित किं परैर्मण्डनै-
स्त्वमेव मम भूषणं सकलनारिचेतोहरम् ।
वरं कुरु पयोधरावथ नितम्बबिम्बेषु मा-
मिति प्रतिवचः श्रुतौ जयति नम्रवक्त्रा वधूः ॥

अथ मध्यमानः

655. लोलभ्रूलतया विपक्षदिगुपन्यासे विधूतं शिर-
स्तद्वृत्तान्तविदीक्षणे कृतनमस्कारो विलक्षः स्थितः ।
ईषत्ताम्र-कपोलकान्तिनि मुखे दृष्ट्यानतः पादयो-
रुत्सृष्टो गुरुसन्निधावपि विधिर्द्वाभ्यां न कालोचितः ॥

—*अमरुकस्य*

656. आशङ्क्य प्रणतिं पटान्तपिहितौ पादौ करोत्यादराद्
व्याजेनागतमावृणोति हसितं न स्पष्टमुद्वीक्षते ।
मय्यालापवति प्रतीपवचनं सख्या सहाभाषते
तस्यास्तिष्ठतु निर्भरप्रणयिता मानोऽपि रम्योदयः ॥

—*भीमसेनस्य*

अथ गुरुमानः

657. स्फुरसि बाहुलते किमनर्थकं
त्वमपि लोचन वाम भव स्थिरम् ।
तमहमागतमप्यपराधिनं
न परिरब्धुमलं न च वीक्षितुम् ॥

658. तदेवाजिह्माक्षं मुखमविशदास्ता गिर इमाः
स एवाङ्गाश्लेषो मयि सरसमाश्लिष्यति तनुम् ।
तदुक्तं प्रत्युक्तं यदपटुशिरः कम्पनपरं
प्रियामानेनाहो पुनरपि कृता मे नववधूः ॥

—*संकुलस्य*

659. दृष्टे लोचनवर्त्मना मुकुलितं पार्श्वस्थिते वक्त्रवन्-
न्यग्भूतं बहिरासितं पुलकवत् स्पर्शं समातन्वति ।
नीवीबन्धवदासितं शिथिलतां सम्भाषमाणे क्षणान्-
मानेनापसृतं ह्रियेव सुदृशः पादस्पृशि प्रेयसि ॥

अथ मानिन्याः क्रोधोक्तिः

660. कान्ते किं कथयामि मां प्रति मनागालोकयालोकितं
किं वाचैव न चेतसापि चतुरे दुर्ज्ञेयमेतन्मम ।
तत् सत्यं चतुरास्मि यत्तव मनोवृत्तं बहिर्वर्तिनी
जाने चेतसि मे स्थितस्य भवतो दुर्ज्ञेयमेतत् पुनः ॥

661. पटप्रान्तं मुञ्च त्वमपि यदि मुञ्चस्यपि मया
धृतस्ते वस्त्रान्तो नहि - नहि तदा मोचयसि किम् ।
प्रिये मानो मुक्तः स (हि) खलु तदैव प्रिय कदा
प्रियाशब्देनासीत्तव यदपरस्यां व्यवहृतिः ॥

---*नीलकण्ठशुक्लानामेतौ*

662. बाले नाथ विमुञ्च मानिनि रुषं रोषान्मया किं कृतं
खेदोऽस्मासु न मेऽपराध्यति भवान् सर्वेऽपराधा मयि ।
तत् किं रोदिषि गद्गदेन वचसा कस्याग्रतो रुद्यते
नन्वेतन्मम का तवास्मि दयिता नास्मीत्यतो रुद्यते ॥

—*कुमारदासस्य*

663. प्रातर्म्लानिमुपागतं कुत इदं पद्मं प्रिये पद्मिनी-
बन्धावभ्युदितेऽपि पृच्छ शशिनं म्लानेर्निदानं हि यः ।
क्वासौ वक्षसि ते नवोऽयमुदितो दूरान्नतेर्भाजनं
दृश्यः किन्तु मयैव शून्यहृदयैर्न त्वादृशैर्दृश्यते ॥

—*नीककण्ठशुक्लानाम्*

664. कान्ते किं कुपितासि कः परजने प्रावेशकोपो भवेत्
कोऽयं सुभ्रु परस्त्वमेव दयिते दासोऽस्मि ते किं परः ।
इत्युक्त्वा प्रणतः प्रियः क्षितितलादुत्थाप्य सानन्दया
नेत्राम्भःकणिकाङ्किते स्तनतटे तन्व्या समारोपितः ॥

—रुद्रस्य

अथ मानमोचनम्

665. साम दानञ्च भेदश्च नत्युपेक्षे रसान्तरम् ।
तद्भङ्गाय पतिः कुर्यात् षडुपायानिति क्रमात् ॥

अथ साम

666. अस्रैः कज्जल संमिश्रैः कपोल-तलवासिभिः ।
अधुना विधुना तुल्यं मुखं मानिनि मा कृथाः ॥

—कस्यापि

667. किं कण्ठे शिथिलीकृतो भुजलतापाशः प्रमादान्मया
निद्राच्छेदविवर्तनेऽप्यभिमुखं नाद्यापि सम्भावितम् ।
अन्यस्त्रीजनसंकथालघुरहं स्वप्ने त्वया लक्षितो
दोषं पश्यसि कं प्रिये परिजनोपालम्भयोग्ये मयि ॥

668. आधाय मानं रहसि स्थितायाः
सम्भाव्य जृम्भामचलेन्द्रजायाः ।
चाटुध्वनि-स्मेर-मुखो महेशः
कराङ्गुलीभिः कलयाञ्चकार ॥

—भानुकरस्य

अथ दानम्

669. प्रणयिना निजहारलता स्वयं तव किलेति निवेश्य कुचस्थले ।
पुलकभाजि पुरा कुपिताप्यसौ कृतकचग्रहणं परिचुम्बिता ॥

—रुद्रस्य

670. ददाति हारकेयूरकङ्कणं हरिणीदृशे ।
गृह्णाति च ततः कान्तश्चुम्बनाश्लेषभाषणम् ॥

—निर्मलस्य

अथ भेदः

671. लिखन्नास्ते भूमिं बहिरवनतः प्राणदयितो
निराहाराः सख्यः सततरुदितोच्छूननयनाः ।
परित्यक्तं सर्वं हसितपठितं पञ्जरशुकै-
स्तवावस्था चेयं विसृज कठिने मानमधुना ॥

—अमरुकस्य

672. हृदयज्ञया गवाक्षे विसदृशं किमपि विकूजितं सख्या ।
यत् कलहभिन्नतल्पा भय-कपटादेति मां सुतनुः ॥

—गोवर्धनस्य

अथ नतिः

673. रन्तुं प्रियः करयुगेण गृहीतपाद-
पद्मः सृजन्ननुनयानपि मानवत्याः ।
उत्पश्य दीनवदनोऽप्यनिरीक्ष्य वक्त्रं
तस्याः शुशोच कुचगौरवमप्यभीष्टम् ॥

—अमरचन्द्रस्य

674. मध्येजनः मुरजितः प्रणतिप्रसङ्गे
मौलौ कृताञ्जलिपुटस्य नताननस्य ।
तस्य स्मरामि सखि सस्मितमक्षिकोणं
तिर्यङ् मुहुर्विवलितं मयि मानवत्याम् ॥

—नीलकण्ठशुक्लानाम्

अथ उपेक्षा

675. कर्णालङ्करणं कदा कृतमिति स्पर्शः कपोले कृतः
कीदृक् कान्तमहो नु कञ्चुकमिति न्यस्तः करो वक्षसि ।
रागः साहजिकः किमेष वदनेऽप्यस्पर्शि बिम्बाधरो
मौग्ध्येनैव मृगीदृशि व्यवसितं निर्विघ्नमासीन्मम ।।

—नीलकण्ठशुक्लानाम्

676. एतत् किं ननु कर्णभूषणमयं हारस्तु काञ्ची नवा
बद्धा काचिदयं त्वयाद्य तिलकः श्लाघ्यः प्रिये कल्पितः ।
प्रत्यङ्गं स्पृशतेति तत्क्षणभवद्रोमाञ्चमालाञ्चिता
तन्वी मानमुपेक्षयैव शनकैर्धूर्त्तेन संमोचिता ।।

—रुद्रस्य

अथ रसान्तरम्

677. अद्यापि तन्मनसि सम्प्रति वर्तते मे
रात्रौ मयि क्षुतवति क्षितिपालपुत्र्या ।
जीवेति मङ्गलवचः प्रतिहृत्य सद्यः
कर्णेकृतं कनकपत्रमनालपन्त्या ।।

—विल्हणस्य

अथ मानान्तसम्भोगः

678. संदष्टेऽधरपल्लवे सचकितं हस्ताग्रमाधुन्वती
मा मा मुञ्च शठेति कोपवचनैरानर्तितभ्रूलता ।
सीत्काराञ्चितलोचना सरभसं यैश्चुम्बिता मानिनी
प्राप्तं तैरमृतं श्रमाय मथितो मूढैः सुरैः सागरः ।।

—अमरुकस्य

679. मानावसानावसरे करेण
नास्पर्शि बाष्पाकुलमक्षि तन्व्याः ।
नाश्रावि यैर्मा स्पृश मां शठेति
तेषां गतं यौवनमेवमेव ॥

—नीलकण्ठशुक्लानाम्

अथ कलहान्तरिता

680. निःश्वासा वदनं दहन्ति हृदयं निर्मूलमुन्मूल्यते
निद्रा नैति न दृश्यते प्रियमुखं नक्तन्दिवं रुद्यते ।
अङ्गं शोषमुपैति पादपतितः प्रेयांस्तथोपेक्षितः
सख्यः कं गुणमाकलय्य दयिते मानं वयं कारिताः ॥

681. अद्यारभ्य यदि प्रिये पुनरहं मानस्य चान्यस्य वा
गृह्णीयां विषरूपिणः शठमतेर्नामापि संक्षेपतः ।
किन्तेनैव विना शशाङ्ककिरणस्पृष्टाट्टहासा निशा
वैको वा दिवसः पयोदमलिनो यायान्मम प्रावृषि ॥

—अमरुकस्यैतौ

682. चलं चेतः पुंसां सहजसरलाः पङ्कजदृशो
भवत्येवं क्रोधः क्वचिदपि कदाचित्तरुणयोः ।
दहेदङ्गं भृङ्गो विधुरपि विदध्यात् परिभवं
स्मरो मां मथ्नीयादिति किमपि नाज्ञासिषमहम् ॥

—भानुकरस्य

683. मानोन्नतेत्यसहनेति विपण्डितेति
मय्येव धिक्कृतिरनेकमुखी सखीनाम् ।
दाक्षिण्यमात्रमसृणेन विचेष्टितेन
धूर्तस्य तस्य हि गुणानुपवर्णयन्ति ॥

अथ प्रवासः

684. आयाते श्रुतिगोचरं प्रियतमप्रस्थानकाले जनात्
तल्पान्तस्थितया तयाननमलं दृष्ट्वा चिरं मुग्धया ।
सोच्छ्वासं दृढमन्युनिर्भरगलद्बाष्पाम्बुधौतं तया
स्वं वक्त्रं विनिवेश्य भर्तृहृदये निःशब्दकं रुद्यते ॥

685. दृष्टः कातरनेत्रया चिरतरं बद्धाञ्जलि याचितः
पश्चादंशुकपल्लवेन विधृतो निर्व्याजमालिङ्गितः ।
इत्याक्षिप्य समस्तमर्थमघृणो गन्तुं प्रवृत्तः शठः
पूर्वं प्राणपरिग्रहो दयितया मुक्तस्ततो वल्लभः ॥

अथ गमनपृच्छा

686. यामीत्युक्ते हृदयपतिना तत्क्षणं शङ्खभूषाः
स्वैरं स्वैरं झटिति गलिताः पाणिपङ्केरुहाग्रात् ।
नाहं यामीत्यनुपदमिदं वाक्यमाकर्णयन्त्या-
स्तन्व्याः शेषा अपि चटचटेत्यङ्गभङ्गं समीयुः ॥

687. यामीति प्रियपृष्टायाः प्रियायाः कण्ठवर्त्मनि ।
वचोजीवितयोरासीत् पुरोनिःसरणे रणः ॥

688. प्रस्थानावसरो मम प्रियतमे बाष्पः क्षणं वार्यतां
धैर्यं चेतसि धीयतां, न मिलनं यातस्य किं स्यात् पुनः ?
इत्युक्ते दयितेन नैव मिलनं यातस्य जीवस्य तु
स्यादुक्त्वेति तया तथा विरचितं यः प्रस्थितः स स्थितः ॥

689. गमनादपि गन्तुमुद्यमस्ते
प्रिय मां प्राणवतीन्तुदत्यतीव ।
हननादधिकं न किं तदेयु-
स्तरवारेः स्फुरणानि वध्यचेतः ॥

—नीलकण्ठस्यैतौ

गमनविघ्नोपायः

690. प्रहरविरतो मध्ये वाऽह्नस्ततोऽप्यपरेण वा
किमुत सकले याते चाह्नि प्रिय त्वमिहेष्यसि ।
इति दिनशतप्राप्यं देशं प्रियस्य यियासतो
हरति गमनं बालालापैः सबाष्पगलज्जलैः ॥

—*अमरुकस्य*

691. नायं मुञ्चति सुभ्रुवामपि तनुत्यागे वियोगज्वर-
स्तेनाहं विहिताञ्जलिर्यदुपते पृच्छामि सत्यं वद ।
ताम्बूलं कुसुमं पटीरमुदकं यद् बन्धुभिर्दास्यते
स्यादत्रैव परत्र तत् किमु विषज्वालावली दुःसहम् ॥

—*भानुकरस्य*

अथ सखीकृतविघ्नोपायः

692. या बिम्बोष्ठरुचिः क्व विद्रुममणिः स्वप्नेऽपि तां लब्धवान्
हासश्रीसदृशैस्तपोभिरपि किं मुक्ताफलैर्भूयते ।
तत्कान्तिः शतशोऽपि वह्निपतनैर्हेम्नः कुतः सेत्स्यति
त्यक्त्वा रत्नमयीं प्रयासि दयितां कस्मै धनायाध्वग ॥

—*कस्यापि*

693. केशे केसरमालिकामपि चिरं या बिभ्रती खिद्यते
या गात्रेषु घनं विलेपनमपि न्यस्तं न सोढुं क्षमा ।
दीपस्यापि शिखा न वासभवने शक्नोति या वीक्षितुं
तापं सा विरहानलस्य महतः सोढुं कथं शक्ष्यति ॥

अथ गमनम्

694. अङ्कतोऽपि शयनादपि गेहाद् ग्रामतोऽपि नगरादपि दूरम् ।
एष गच्छति हरिर्मधुपुर्यां, पामरेण विधिना किमकारि ॥

695. प्रस्थानं वलयैः कृतं प्रियसखैरस्त्रैरजस्रं गतं
धृत्या न क्षणमासितं व्यवसितं चित्तेन गन्तुं पुरः।
यातुं निश्चितचेतसि प्रियतमे सर्वैः मम प्रस्थितं
गन्तव्ये सति जीवित प्रियसुहृत्सार्थः किमुत्सृज्यते ॥

696. न तावद्विश्रम्भं चिरपरिचयाद् याति हृदभं
मुखं दुःखोष्माणं न च निरतिशेषं विसृजति।
अमी वेणीभङ्गाः प्रियसखि न यान्त्येव समतां
तथाप्यद्यैवायं मयि निरनुकम्पः प्रवसति॥

अथ विरहिणीप्रलापाः

697. यात्रामङ्गलसंविधानरचनाव्यग्रे सखीनां गणे
वाष्पाम्भःपिहितेक्षणे गुरुजने तद्वत् सुहृन्मण्डले।
प्राणेशस्य मदीक्षणार्पितदृशः कृच्छ्रादतिक्रामतः
किं व्रीडाहतया मया भुजलतापाशो न कण्ठेऽर्पितः॥

698. समर्प्य हृदि दारुणां मदनवेदनां भूयसी-
मनेन वनवर्त्मना प्रचलितः स मे वल्लभः।
न यामदिशि शब्दितं किमिति न त्वया वायस
त्वया सदनसारिके किमिति वा कृतं न क्षुतम्॥

—*भानुकरस्य*

699. हंहो वायस सुस्वरं पुनरसौ तारः स्वरः प्रोच्यता-
मुच्चैराश्रयतोरणं सुविशदं पर्जन्यचापोपमम्।
हस्ताभ्यां घनसारमिश्रमनिशं दास्यामि दध्योदनं
नानावर्णसुवर्णरत्नघटितं दास्यामि ते पञ्जरम्॥

700. मूकीभूताः पिकयुवतयः किं वसन्तेऽपि तस्मिन्
किं वा जातो मलयमरुतां दुष्प्रवेशः स देशः ।
किं वा तस्मिन्नमृतमहसो न प्लवन्ते मयूखा
यत्रावासं प्रियसखि मम स्वान्तचौरः करोति ॥

701. उच्चैर्विरौति हि मयूरकुलं यदम्ब
मन्दं प्रवाति मकरन्दकरम्बितश्च
वातः, प्रवासिपतिरेति न, तेन मन्ये
निर्घ्राणनिर्घृणविकर्णविहृत्तमोऽसौ ॥

702. उपैति घनमण्डली नटति नीलकण्ठावली
तडिल्लसति सर्वतो वहति केतकीं मारुतः ।
इतोऽपि यदि नागतः प्रियतमो नु मन्येऽधुना
दधाति मकरध्वजस्त्रुटितशिञ्जिनीकं धनुः ॥

अथ स्मरोपालम्भः

703. स्वयमप्राप्तदुःखो यः स दुनोति न विस्मयः ।
त्वं स्मर प्राप्तदाहोऽपि दहसीति किमुच्यते ॥

704. हृदयमाश्रयसे यदि मामकं
ज्वलयसि त्वमनङ्ग तदेव किम् ।
स्वयमपि क्षणदग्धनिजेन्धनः
क्व भवितासि हताश हुताशवत् ॥

—श्रीहर्षस्य

705. शिव शिव सहसैव पुष्पधन्वा
प्रलयनटेन किमित्यकारि भस्म ।
भ्रमयति जगदेष यत् पिशाचः
स च मणिमन्त्रमहौषधैर्न साध्यः ॥

706. पतिवियोगकृते रमणीजने कृपणशूर विमुञ्चसि सायकान् ।
पशुपतेर्यदि लोचनगोचरं जव्रसि मन्मथ सारमवैमि ते ॥

अथ चन्द्रोपालम्भः

707. कालं पुरा गरलमम्बुनिधेरुदस्था-
दद्येन्दुनाम विशदं विषमभ्युदेति ।
अद्यादिदं स गिरिशो यदि हन्त हन्यात्
काष्र्ण्यं स्वकण्ठनिहितं सखि मद्भयश्च ॥

708. विधे पिधेहि शीतांशुं यावन्नायाति मे पतिः ।
आयाते दयिते कुर्याः शतचन्द्रं नभःस्थलम् ॥

709. कवलयसि चन्द्रदीधितिर्नं विरलमश्नासि नूनमङ्गारान् ।
अधिकतरमुष्णमनयोः किमिह चकोरावधारयसि ॥

710. सूतिर्दुग्धसमुद्रतो भगवतः श्रीकौस्तुभौ सोदरौ
सौहार्द्रं कमलाकरेषु किरणाः पीयूषधाराकिरः ।
स्पर्द्धा ते वदनाम्बुजे मृगदृशां तत्स्थाणुचूडामणे
हंहो चन्द्र कथं नु सिश्वसि मयि ज्वालामुचो रोचिषः ॥

—*राजशेखरस्य*

अथ वियोगिनीलेखाः

711. कस्मात्त्वं भवदालयाद् वद सखीक्षेमं तवानुग्रहाद्
दृष्टा मे सुभगा नही हि सुभगा दृष्टा भवद्गेहिनी ।
स्वर्भानुं विषमेक्षणं विषधरं काकं वराकी गृहे
चन्द्रानङ्गसमीरकोकिलभयाद् व्यग्रा लिखन्ती मुहुः ॥

712. अगारे सर्वस्मिन् गिरिशम-निशानाथशकलं
भुजङ्गानुत्तुङ्गानपि सकलवातायनपथे ।
निकुञ्जेषु श्येनानधिगृहशिरो राहुवलयं
लिखन्त्या नीयन्ते शिव शिव तया हन्त दिवसाः ॥

—*उदयरामस्य*

अथ दिवसगणना

713. लिखति न गणयति रेखा निर्भरबाष्पाम्बुधौतगल्लतला ।
अवधिदिवसावसानं मा भूयादिति शङ्कया बाला ॥

714. कथितावधिजीवितावधिर्गणयन्ती दिवसाननुक्षणम् ।
दयिताश्रुभरेण जीव्यते वत रेखा कतिचिद्विलुम्पिता ॥

अथ अनङ्गलेखः

715. अनलस्तम्भनविद्यां सुभग भवान्नियतमेव जानाति ।
मदनशराग्नितप्तहृदि कथमन्यथा निवससि ॥

716. दूरं गते त्वयि भवन्मुखसोदराणि
सन्तापमत्र नलिनान्यपि धारयन्ति ।
मासः कृतावधिरधीश स पूर्ण एव
संप्रत्यपि स्मरसि मां न कथं कथञ्चित् ॥

—*बालभारतात्*

717. अहमिह स्थितवत्यपि तावकी
त्वमसि तत्र वसन्नपि मामकः ।
लिखति लेखमनङ्गरसाकुला
विरहिणी प्रहिणोति प्रियं प्रति ॥

718. प्रत्यागमिष्यति भविष्यति सङ्गमो नौ
सम्पत्स्यते यदि दयाऽभिमतोऽभिलाषः ।
एषा गता न पुनरेष्यति जीवितेश
विद्युद्विलासचपला किल यौवनश्रीः ॥

—*कस्यापि*

अथ दूतीकृतावस्थानिवेदनम्

719. वृथा गाथाश्लोकैरलमलमलीकं मम रुजं
कदाचिद्धूर्त्तोऽयं कविवचनमित्याकलयति ।
इदं पार्श्वे तस्य प्रहिणु सखि लग्नाञ्जनलव-
स्रवद्बाष्पोत्पीडग्रथितलिपि ताटङ्कयुगलम् ॥

720. पत्रं न श्रवणेऽस्ति बाष्पगुरुणोर्नो नेत्रयोः कज्जलं
रागो नाधरपल्लवे चरणयोर्युग्मे न चालक्तकः ।
वार्तोच्छित्तिषु निष्ठुरेति भवता मिथ्यैव सम्भाव्यते
सा लेखं लिखतु च्युतोपकरणन्यायेन केनाधुना ॥



अथ नायिकायाः विप्रलम्भश्रृङ्गारः

॥ तस्याः विप्रलम्भजन्यदशावस्थाः ॥

तत्र भरतः

721. अङ्गासौष्ठवहृत्तापपाण्डुताः कृशताऽरुचिः
अधृतिः स्यादनालम्बतन्मयोन्मादमूर्च्छनाः ।
मृत्तिश्चेति दशावस्थाः ...... । इति
तत्र क्रमेणोदाहरणानि ॥

अथाङ्गासौष्ठवम्

722. जटा नेयं वेणीकृतकचकलापो न गरलं
गले कस्तूरीयं शिरसि शशिरेखा न कुसुमम् ।
इयं भूतिर्नाङ्गे प्रियविरहजन्मा धवलिमा
पुरारातिभ्रान्त्या कुसुमशर किं मां प्रहरसि ॥

723. वक्त्रे यां मृगनाभिपङ्करचनां खिन्नेव धत्ते परं
यस्याः सान्द्रमुरःस्थले निपतितं भारायते चन्दनम् ।
अङ्गान्यप्यतिलालसा वहति या क्लेशेन तस्यामपि
न्यस्तः शोकभरोऽपरः कथमहो निस्त्रिंशता वेधसः ॥

अथ हृत्तापः

724. तस्याश्चन्दनकर्दमोऽपि वपुषः कामाय धूपायते
मुक्ताहारगणो वियोगदहनैः सद्यः सुधैवाभवत् ।
पीठं तत्पदसंयुतं तदभवद् धूमायमानं क्षणात्
प्राप्तं निर्जलतामहो महदपि स्नानेन लीलासरः ॥

—*सुबुद्धिरायस्य*

725. श्वासैस्त्रुट्यति वेगिभिर्नयनयोरुष्णाम्बुभिः क्लाम्यति
स्वेदाम्भोभरवाहिना करयुगेणावर्जिता म्लायति ।
इत्यालोच्य तया वलद्वदनया तिर्यक्पतन्नेत्रया
दूरोत्सारितहस्तया तव सखे क्रीडालता सिच्यते ॥

726. अङ्गानि मे दहतु कान्तवियोगवह्निः
संरक्ष्यतां प्रियतमो हृदि वर्तते यः ।
इत्याशया शशिमुखी गलदश्रुधारा
धाराभिरुष्णमभिषिञ्चति हृत्प्रदेशम् ॥

अथारुचिः

727. मदकलकृतान्तकासर - खुरपुटनिर्धूतधूलिसंकाशम् ।
केतकरजो निवार्यं सखि यदि कार्यं मम प्राणैः ॥

728. मन्मथेन परितप्तशरीरं चन्दनेन किमु लिम्पसि मूढे ।
अन्तरङ्गबहिरङ्गविधानादन्तरङ्गविधिरेव बलीयान् ॥

अथाधृतिः

729. किं द्वारि दैवहतिके सहकारकेण
संवर्द्धितेन विषपादप एष पापः ।
अस्मिन्मनागपि विकाशविकारभाजि
घोरा भवन्ति मदनायुधसन्निपाताः ॥

730. बत सखि कियदेतत् पश्य वैरं स्मरस्य
प्रियविरहक्लेशेऽस्मिन् रागिलोके तथा हि ।
उपवनसहकारोद्भासिभृङ्गच्छलेन
प्रतिविशिखमनेनोट्टंकितं कालकूटम् ॥

731. मदकलकलकण्ठ-कण्ठनाद-व्यतिकरदन्तुरकाणि दिङ्मुखानि ।
कथमिव गमयेद्विदग्धमल्लीपरिमल-कञ्चुलितानि वासराणि ॥

732 भ्रमय जलदानम्भोगर्भान् प्रमोदय चातकान्
कलय शिखिनः केकागर्भान् कठोरय केतकान् ।
विरहिणि जने मूर्च्छां लब्ध्वा विनोदयति व्यथा-
मकरुण पुनः संज्ञाव्याधिं विधाय किमीहसे ॥

733. विश्रान्तो दिवसः प्रपञ्चितरुतैर्वाचालितः कोकिलैः
सख्यः सम्प्रति निर्भयाः स्म जहत प्राणेषु नः संशयम् ।
इत्यन्ते दिवसस्य हन्त विगतत्रासां तथा भाषिणीं
ज्योत्स्नाकैरवभैरवो नयति तां मोहं प्रदोषोदयः ॥

734. यामिनि महिलासि त्वं तथापि दुःखं न जानासि ।
वृद्धिं गच्छसि विरहे तनुतामायासि सङ्गमे पत्युः ॥

अथ पाण्डुता

735. स्थगयति नयनास्रं छद्मना धूमभूम्नां
प्रथयति च नितान्तं कार्श्यमङ्गप्रकृत्या ।
अहह विरहबाधां गोपयत्यम्बुजाक्षी
तदपि वदपि साक्षी पाण्डुरो गण्डदेशः ॥

736. अंसे कुन्तलमालिका स्तनतटे नेत्राम्भसां निम्नगा
माद्यन्मन्मथकुञ्जरेन्द्रदशनप्रान्ते विलग्नं मनः ।
किञ्चान्यद्विरहानलेन सरसं दन्दह्यमानं वपु-
र्गण्डापाण्डिमकैतवेन सुतनोः फेनोच्चयं मुञ्चति ॥

अथ कृशता

737. दोलालोलाः श्वसितमरुतो चक्षुषी निर्झराभे
तस्याः शुष्यत्तगरसुमनःपाण्डुरा गण्डभूमिः ।
तद्गात्राणां गुणविनिमयः शक्यते केन वक्तुं
येषामग्रे प्रतिपदुदिता चन्द्रलेखाप्यतन्वी ॥

—राजशेखरस्य

738. अनुरागवर्तिना तव विरहेणोग्रेण या गृहीताङ्गी ।
त्रिपुररिपुणेव गौरी वरतनुरर्द्धावशिष्टेव ।।

अथ अनालम्बः

739. सौधादुद्विजते त्यजत्युपवनं द्वेष्टि प्रभामैन्दवीं
द्वारात् त्रस्यति चित्रकेलिसदसो वेशं विषं मन्यते ।
आस्ते केवलमब्जिनीकिसलयप्रस्तारशय्यातले
संकल्पोपनमत्तदाकृतिरसायत्तेन चित्तेन सा ।।

740. श्वासान्मुञ्चति भूतले विलुठति त्वन्मार्गमालोकते
दीनं रोदिति विक्षिपत्यत इतः क्षामां भुजावल्लरीम् ।
किञ्च प्राणसमान कांक्षितवती स्वप्नेऽपि ते सङ्गमं
निद्रां वाञ्छति न प्रयच्छति पुनर्दग्धो विधिस्तामपि ।।

तन्मयोन्मादः

741. त्वद्देशागतमारुतेन मृदुना सञ्जातरोमाञ्चया
त्वद्भूषाङ्कितचारुचित्रफलके निर्वापयन्त्या दृशम् ।
त्वन्नामामृतसिक्तकर्णपुटया त्वन्मार्गवातायने
तन्व्या पञ्चमगीतिगर्भितगिरा नक्तंदिवं स्थीयते ।।

अथ मूर्च्छा

742. त्वां चिन्तापरिकलिपतं सुभग सा सम्भाव्य रोमाञ्चिता
शून्यालिङ्गनसञ्चलद्भुजयुगेनात्मानमालिङ्गते ।
किञ्चान्यद्विरहव्यथाप्रशमनीं सम्प्राप्य मूर्च्छां चिरात्
प्रत्युज्जीवति कर्णमूलपठितैस्त्वन्नाममन्त्राक्षरैः ।।

743. वीणामङ्के कथमपि सखीप्रार्थनाभिर्विधाय
स्वैरं स्वैरं सरसिजदृशा गातुमारब्धमेव ।
तन्त्रीबुद्ध्या किमपि विरहक्षीणदीनाङ्गवल्ली-
मेनामेव स्पृशति बहुशो मूर्च्छना चित्रमेतत् ॥

—*गणपतेः*

अथ मरणम्

744. रसविच्छेदहेतुत्वान्मरणं नैव वर्ण्यते ।
जातप्रायन्तु तद्वाच्यं चेतसा काङ्क्षितं तथा ॥

जातप्रायं यथा

745. आच्छिन्नं नयनाम्बु बन्धुषु कृतं तापं सखीष्वाहितो
दैन्यं न्यस्तमशेषतः परिजने चिन्ता गुरुभ्योऽर्पिता ।
अद्य श्वः किल निर्वृतिं व्रजति सा प्राणैः परं खिद्यते
विश्रब्धो भव विप्रयोगजनितं दुःखं विभक्तं तया ॥

—*अमरुकस्य*

चेतसाकाङ्क्षितं यथा

746. आयाता मधुयामिनी यदि पुनर्नायात एव प्रभुः
प्राणाः यान्तु विभावसौ यदि पुनर्जन्मग्रहं प्रार्थये ।
व्याधः कोकिलबन्धने विधुपरिध्वंसे च राहुग्रहः
कन्दर्पे हरनेत्रदीधितिरहं प्राणेश्वरे मन्मथ ॥

अथ दूतीकृतनायकानयनोपायः

747. तस्याः स्मरन्त्याः सुभग त्वदीयं मुहुर्मुहुर्मन्मथचेष्टितं तत् ।
बभूव दृष्टिः क्षणमात्रकम्पा क्षणं प्रफुल्ला क्षणमश्रुमिश्रा ॥

748. अस्मिँश्चन्द्रमसि प्रसन्नमहसि व्याकोशकुन्दत्विषि
प्राचीनं खमुपेयुषि त्वयि गते दूरं निजप्रेयसि ।
श्वासः कैरवकोरकीयति मुखं तस्याः सरोजीयति
क्षीरोदीयति मन्मथो दृगपि च द्राक् चन्द्रकान्तीयति ।।

749. श्वासेषु प्रथिमा मुखे करतले गण्डस्थले पाण्डिमा
मुद्रा वाचि विलोचनेऽश्रुपटलं देहे च दाहोदयः ।
एतावत् कथितं यदस्ति हृदये तस्याः कृशाङ्ग्याः पुन-
स्तज्जानासि ननु त्वमेव सुभग श्लाघ्या स्थितिस्तत्र यत् ।।

750. किं कृपापि तव नास्ति कान्तया
पाण्डुगण्डपतितालकान्तया ।
शोकसागरजलेऽद्य पातितां
त्वद्गुणस्मरणमेव पाति ताम् ।।

—घटकर्परस्य

751. वाचस्तावदपेक्षते पिकयुवा लम्बालकानां चयं
भृङ्गाली विरुणद्धि चूतकलिका सौभाग्यमाशंसति ।
किञ्चान्यत् कथयामि निर्दय दशा तस्यास्तथा वर्तते
निश्वासानपि हर्तुमिच्छति यथा क्रूरो वसन्तानिलः ।।

752. यावद् यावद् भवति कलया मांसलोऽयं शशाङ्क-
स्तावद् तावद् द्युतिमयतनुः क्षीयते सा मृगाक्षी ।
मन्ये धाता घटयति विधुं सारमाकृष्य तस्या
यावद् यावत् सुभग न भवेत् पूर्णिमा तावदेहि ।।

अथ नायकं प्रत्यागमनम्

753. गर्ज वा वर्ष वा मेघ मुञ्च वाऽशनिमम्बरात् ।
गणयन्ति न शीतोष्णं वल्लभाभिमुखा स्त्रियः ।।

अथ नायिकाया निमित्तानि

754. स्फुरति यदिदमुच्चैर्लोचनं सुभ्रु वामं
स्तनतटमपि धत्ते चारु रोमाञ्चमालाम् ।
कलयति च यदन्तः कम्पतामूरुयुग्मं
ननु वदति तदद्य प्रेयसा सङ्गमन्ते ।।

755. प्रणमति पश्यति चुम्बति संश्लिष्यति पुलकमुकुलितैरङ्गैः ।
प्रियसङ्गमाय स्फुरन्तीं वियोगिनी वामबाहुलताम् ।।

—गोवर्धनस्य

अवधिदिनकृत्यम्

756. लतामूले लीनो हरिणपरिहीनो हिमकरः
स्फुरत्ताराकारा पतति जलधारा कुवलयात् ।
धुनीते बन्धूकं तिलकुसुमजन्मा हि पवनो
गृहद्वारे पुण्यं परिणमति कस्यापि कृतिनः ।।

757. अधिदेहलि हन्त हेमवल्ली
शरदिन्दुः सरसीरुहे शयानः ।
अधिखञ्जनचञ्चु मौक्तिकालिः
फलितं कस्य सुजन्मनस्तपोभिः ।।

—षाण्मासिकस्यैतौ

758. सम्प्राप्तेऽवधिवासरे क्षणमरुद्वातायनं प्रेयसी
वारं वारमुपेत्य निष्कृपतया निश्चित्य किञ्चिच्चिरम् ।
सम्प्रत्येव निवेद्य केलिकुररं सास्रं सखिभ्यः शिशु-
मालत्याः सह कोरकेण करुणः पाशग्रहो निर्मितः ॥

अथ नायकागमनम्

759. श्रुत्वा गर्जितमम्बरे जलमुचः सद्यो भयादुन्मुखी
यावन्मुञ्चति नाश्रुवारिपटलं यावन्न मेघो जलम् ।
तावद्वाहनपांशु-सूचित-पति-प्रत्यागतिः स्वां तनुं
रोमोद्भेदवतीं निषिञ्चति वधूमानन्दबाष्पोर्मिभिः ॥

760. बाला वन्दनमालिकाकिसलयग्रन्थीनधः कुर्वतः
श्रुत्वा वल्लभवाहनस्य रटितं दासेरकस्याङ्गने ।
आक्रन्दात् सुहृदो वनाद् गुरुजनं नासाग्रसङ्गादसून्
कान्तं स्त्रीवधपातकात् स्मरमसत्कीर्तेः परावर्तयत् ॥

761. दीर्घा वन्दनमालिका विरचिता दृष्ट्यैव नेन्दीवरैः
पुष्पाणां प्रकरः स्मितेन रचितो नो कुन्दजात्यादिभिः ।
दत्तः स्वेदमुचा पयोधरयुगेनार्घ्यो न कुम्भाम्भसा
स्वैरेवावयवैः प्रियस्य विशतस्तन्व्या कृतं मङ्गलम् ॥

762. आयाते दयिते मरुस्थलभुवामुत्प्रेक्ष्य दुर्लङ्घ्यतां
गेहिन्या परितोषबाष्पतरलामासज्य दृष्टिं मुखे ।
दत्त्वा पीलुशमीकरीरकवलान् स्वेनाञ्चलेनादरा-
दुन्मृष्टं करभस्य केसरसटाभारावलग्नं रजः ॥

763. आगच्छन् सूचितो येन येनानीतश्च मे प्रियः ।
प्रथमं सखि कः पूज्यः काकः किं वा क्रमेलकः ॥

अथौत्सुक्यम्

764. गुरुजननयने पिधेहि निद्रे
त्वरितमिहास्तमुपैहि पद्मबन्धो ।
इति वदति मनोभवाभिभूता
चिरसमुपागतवल्लभा मृगाक्षी ॥

765. मुखं प्रियायाः समुदीक्षमाणः
कान्तो दिनस्यान्तमपेक्षमाणः ।
मुहुर्मुहुर्व्योमनि तिग्मभानौ
सम्भावयामास विलोचनानि ॥

766. निशम्य केलीभवनोपकण्ठे
मञ्जीरमञ्जुध्वनिमध्वनीनः ।
यथा तथा बद्धकथावशेषं
समापयामास समं सुहृद्भिः ॥

अथ निशि मिलनम्

767. उत्क्षिप्यालकमालिकां विलुलितामापाण्डुगण्डस्थलाद्
विश्लिष्यद्वलयप्रपातभयतः प्रोन्नम्य किञ्चित् करौ ।
द्वारस्तम्भनिषण्णगात्रलतिका केनापि पुण्यात्मना
मार्गालोकनदत्तदृष्टिरबला तत्कालमालिङ्गिता ॥

—रुद्रस्य

768. गत्वा जीवितसंशयमभ्यस्तः सोढमतिचिराद्विरहः ।
अकरुण पुनरपि दित्ससि सुरतदुरभ्यासमस्माकम् ॥

—गोवर्धनस्य

769. कृशा केनासि त्वं प्रकृतिरियमङ्गस्य दयिते
मलाधूम्रा कस्माद् गुरुजनगृहे पाचकतया ।
स्मरस्यस्मान् कच्चिन्नहि नहि नहीत्येवमगमत्
स्मरोत्कम्पं बाला मम हृदि निपत्यैव रुदिता ॥

770. कृशासीत्यालीना मलिनवसनासीत्यवनता
विदृश्यासीति त्वं कुचकलशकम्पं प्ररुदिता ।
परिष्वक्ता यावद् प्रणयपदवीं कामपि गता
ततः सारङ्गाक्ष्या हृदयसदने लीनमभवत् ॥

771. चिरविरहिणोरुत्कण्ठार्तिश्लथीकृतगात्रयो-
र्नवमिव जगद् जातं भूयश्चिरादभिजानतोः ।
कथमपि दिने दीर्घे याते निशामधिरूढयोः
प्रसरति कथा बह्वीर्यूनोर्यथा न तथा रतिः ॥

772 किमपि किमपि मन्दं मन्दमासत्तियोगा-
दविचलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण ।
सपुलकपरिरम्भव्यापृतैकैकदोष्णो-
रविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत् ॥

—भवभूतेः

॥ अथ विरहान्तसंयोगप्रशंसा ॥

तत्र स्त्रीवाक्यम्

773. सार्था नेत्रविशालताऽद्य भवतो वक्त्राम्बुजापायिनी
सार्थं पाणिमृदुत्वमङ्ग भवतः सेवासु यल्लोलुपम् ।
सार्थं नाथ वपुस्त्वदीयनयनद्वन्द्वस्य केलीगृहं
भूयः किं बहुनाहमस्मि सकलात् सार्थीकृतार्था त्वया ॥

—निर्मलस्य

774. नेत्रैः सहस्रैः प्रियगात्रशोभां सम्भावनीयान्तु विभावयन्त्याः ।
किं लोचनाम्भोरुहयुग्ममात्रं विधाय धातः परिवञ्चितास्मि ॥

—लक्ष्मणस्य

नायकस्य उक्तिः

775. यत्तीव्रतिग्मांशुकरः समन्तात् सम्भावितं सर्वमभूद्वियोगे ।
चन्द्रानने चन्द्रिकया परीतं रात्रिन्दिवं सम्प्रति वर्तते मे ॥

—नीलकण्ठशुक्लानाम्

776. कुवलयनयनाकुचान्तरेषु क्षणमपि
येषु न शेरते युवानः ।
शिव शिव करुणापराङ्मुखोऽसौ
गणयति तान्यपि वासराणि वेधाः ॥

777. प्रियादर्शनमेवास्तु किमन्यैर्दर्शनान्तरैः ।
प्राप्यते येन निर्वाणं सरागेणापि चेतसा ॥

अथ सखीवचनम्

778. मुखाज्जृम्भारम्भे प्रसरति मदामोदलहरी
दृशोस्तन्द्रीभावः स्फुरति विलसा गात्रलतिका ।
त्वमेतादृक्कान्तिः कमलमुखि धन्यैव नितरा-
मसौ धन्यो यस्ते सकलरजनीं जागरयिता ॥

॥ इति श्रीभट्टगोविन्दजित् संगृहीते सभ्यालङ्करणे विप्रयोग-
शृङ्गारे प्रवासविरहाख्योऽष्टमो मरीचिः ॥

॥ शुभन्धुरीति ॥

परिशिष्टम्

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकाः	संख्या

२२

ग्रन्थेऽस्मिन्समागतकवीनामनुक्रमणिका



कबिनाम

भानुपण्डितः
भारविः
भावमिश्रः
भासः
भिक्षाटनः
भीमसिंहः
भीमसेनः
भैयाभट्टः
मनोहरः
माघः
माघकविः
मुरारिः
मेढः
रघुपतिः
राघवानन्ददेवः
राजशेखरः
रामकविः
रामिलसोमिलौ
राहुकः
रुद्रः
लक्ष्मणः
लक्ष्मणभट्टः

कविनाम

लक्ष्मणठक्कुरः
वररुचिः
वराहः
वाणीविलासदीक्षितः
वाल्मीकिः
वासुदेवः
वाहिनीपतिः
विकटनितम्बा
वेदव्यासः
शकवृद्धिः
शार्ङ्गधरः
शीलाभट्टारिका
शूद्रकः
श्रीहर्षः
श्रुतधरः
श्वेताम्बरश्रीचन्द्रः
षाण्मासिकः
सुबुद्धिरायः
संकुलः
हरिहरः
क्षेमेन्द्रः
त्रिविक्रमः

